[illegible]

अथर्ववेद-शतकम्

अथर्ववेद के हृदयग्राही १०० मंत्रों का भाष्य

संग्रहीता—

स्वामी अच्युतानन्द सरस्वती

प्रथमवार आश्विन १९८५, मूल्य सादा =)

२००० दयानन्दाब्द सजिल्द ।)॥

"आर्य्य-साहित्य-विभाग-ग्रंथमाला"

सम्पादक—

वाचस्पतिः एम० ए०

ग्रन्थांक ६

प्रकाशक—

अध्यक्ष 'आर्य साहित्य विभाग'

आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, लाहौर

मुद्रक—

श्री देवचन्द्र विशारद

हिन्दी भवन प्रेस, अनारकली, लाहौर

ओ३म्

सम्पादकीय वक्तव्य

ऋग्वेद शतक का प्रथम संस्करण गतवर्ष एप्रिल मास में प्रकाशित किया गया था। उस ग्रन्थ के आरम्भ में जो 'निवेदन' दिया गया था उसमें 'आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा' के मन्त्री जी ने घोषणा की थी कि—"श्री स्वामी जी का विचार इसी प्रकार से चारों वेदों से ईश्वर भक्ति का एक एक गुटका तैयार करने का है।" इसी घोषणा के अनुसार गत मार्गशीर्ष में यजुर्वेद शतक प्रकाशित किया गया था। गत श्रावण मास में सामवेद शतक प्रकाशित किया गया था। ऋग्वेद शतक का तो अब द्वितीय संस्करण भी छप गया है। यजुर्वेद शतक, अब थोड़ा सा

शेष है, इस लिये उसका भी शीघ्र ही द्वितीय संस्करण छपेगा। सामवेद शतक भी लगभग आधा समाप्त हो चुका है। अब अथर्ववेद शतक आर्य जनता की सेवा में भेंट किया जाता है। पहले तीनों शतकों में सब मन्त्र प्रायः ईश्वर भक्ति के ही रखे गये थे, परन्तु इस शतक में किन्हीं कारणों से ऐसे मन्त्र भी आगये हैं, जो कि ईश्वर भक्ति के नहीं, अन्य विषयों—ब्रह्मचर्य गृहस्थ आदि से सम्बन्ध रखते हैं। इनके पाठ से पाठकों को लाभ होगा। आशा है कि अगले संस्करण में इन के स्थान पर भी ईश्वर-भक्ति के मन्त्र ही रख दिए जायेंगे।

यह ग्रन्थ कितना सुन्दर छपा है, यह आप स्वयं देख सकते हैं।

आशा है कि जनता इस ग्रन्थ को अपना कर पुण्य की भागी बनेगी। इस शतक को छापकर

हमने अपने शतकों द्वारा स्वाध्याय के लिये ४०० मन्त्र जनता की सेवा में भेंट कर दिये हैं। फिर साथ ही सुन्दर दो रंगी छपाई सुनहरी जिल्दें और मूल्य भी सारे सैट का केवल १=) प्रत्येक आर्य भाई को यह सैट अपने पास रखना चाहिये।

निवेदक

आश्विन १०९ दयानन्दाब्द

वाचस्पति सम्पादक
अध्यक्ष 'आर्य साहित्य विभाग'

मन्त्र-सूची

* ओ३म् *

अथर्ववेदशतकम्

ये त्रिंपप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ॥१॥ १।१।१॥*

शब्दार्थ—(ये त्रिपप्ताः) जो प्रसिद्ध इक्कीस देव (विश्वा रूपाणि) सब आकारों को (बिभ्रतः) धारण पोषण करने वाले (परियन्ति) प्रति शरीर में यथायोग्य वर्तमान रहते हैं (तेषां बला) उन देवों के बलों को (वाचस्पतिः) वेद वाणी का रक्षक और स्वामी (मे तन्वः) मेरे शरीर के लिये (अद्य दधातु) अब धारण करे।

---

* इन अङ्कों से तात्पर्य काण्ड, सूक्त और मन्त्र है। (सम्पादक)

भावार्थ—हे वेद वाणी के पालक और मालिक परमात्मन् ! मेरे शरीर में जो ५ महाभूत, ५ प्राण, ५ ज्ञानेन्द्रिय, ५ कर्मेन्द्रिय, १ अन्तःकरण ये इक्कीस दिव्य शक्ति वाले देव वर्तमान हैं, जो कि सब शरीर में सब आकार और रूपों को धारण करने वाले हैं, आप कृपा करके इन सब के बल को मेरे लिये धारण करें, जिससे मैं आपका सेवक, आत्मिक शारीरिक आदि बलयुक्त होकर, आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करता हुआ, मोक्ष आदि उत्तम सुख का भागी बनूं ॥१॥

पुनरेहि वाचस्पते देवेन मनसा सह ।
वसोष्पते नि रमय मय्येवास्तु मयि श्रुतम् ॥२॥ १।१।२॥

शब्दार्थ—(वाचस्पते) हे वेद वाणी के स्वामिन् देव ! (देवेन मनसा सह) प्रकाश स्वरूप और अनुग्रह वाली बुद्धि से युक्त आप (पुनः एहि) वाञ्छित फल देने के लिये वारंवार हमारे समीप आवें (वसोः पते) हे धनपते ! हमें इष्ट फल देकर (निरमय) सदा रमण कराओ आप जो फल देवें वह (मयि एव अस्तु) हमारे में बना रहे (मयि श्रुतम्) जो हम वेद सच्छास्त्र पढ़ें, सुनें वे हमारे में बने रहें।

भावार्थ—हे वाचस्पते ! धनपते ! आप हम सब पर कृपा करो, जो २ हमें वांछित फल हैं उनका दान करो, हमारे हृदय में सदा अभिव्यक्त होकर हमें आनन्द में मग्न करो। जैसे कृपालु पिता अपने प्यारे बालक

को वाञ्छित फल फूल देकर क्रीड़ा कराता हुआ प्रसन्न रखता है। ऐसे ही आप हमें अभिलषित फल देकर, रमण कराते हुए प्रसन्न रखें और हमारी यह प्रार्थना अवश्य स्वीकार करें कि, जो २ वेद, शास्त्र और महात्माओं के सदुपदेशों को हम सुनें वे कभी विस्मरण न हों ॥२॥

इन्द्रश्च मृळयाति नो न नः पश्चादघं नशत्।
भद्रं भवाति नः पुरः ॥ ३ ॥ २०।२७।१॥

शब्दार्थ—जब कि (इन्द्रः च) परमैश्वर्यवान् प्रभु ही सब का रक्षक है, तब (मृडयाति नः) वह हमें सुखी करे (पश्चात् अघं न नशत्) पीछे से हमें दुःख न प्राप्त हो और (नः) हमारे (भद्रम्) मङ्गल (पुरः) सम्मुख (भवाति) होवे।

भावार्थ—हे इन्द्र ! आप ही सब के रक्षक तथा सुखदायक हैं, हमें भी सुखी करें। सम्मुख तथा पीछे से भी हमें कभी दुःख प्राप्त न हो, सदा हमारे मङ्गल ही मङ्गल सम्मुख हो, आपकी कृपा से दुःख कभी हमारे समीप न फटके ॥ ३ ॥

इन्द्र॒ आशा॑भ्य॒स्परि॒ सर्वा॑भ्यो॒ अभ॑यं करत् ।
जेता॒ शत्रू॒न् विच॑र्षणिः ॥४॥ २०।९७।१०॥

शब्दार्थ—(इन्द्रः) परमेश्वर (सर्वाभ्यः आशाभ्यः परि) पूर्व पश्चिम आदि सब दिशाओं से हमें (अभयं करत्) निर्भय करें (जेता शत्रून्) सब शत्रुओं को जीतने वाले और (विचर्षणिः) उन सब के द्रष्टा हैं।

भावार्थ—हे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमन् जग-

दीश्वर ! जिस २ दिशा से हमें भय प्राप्त होने लगे, उन सब दिशाओं से हमको निर्भय करें। आपके भक्तों के जो शत्रु हैं उन सब को आप भले प्रकार जानते हैं और उनको जीतने वाले हैं। इस लिये हमारे धर्म और मोक्ष के विघातक बाहर के और विशेष करके अन्दर के काम, क्रोध, लोभ, अहङ्कार आदि सब शत्रुओं का नाश कीजिये ॥ ४ ॥

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु ॥५॥ १९।१५।५॥

शब्दार्थ—(अन्तरिक्षम् नः अभयम् करोति) मध्य लोक हमारे लिये भय राहित्य करे (इमे

उभे द्यावा पृथिवी अभयम्) सब प्राणियों के निवास स्थान, यह दोनों द्यु लोक और पृथिवी लोक भय राहित्य को करें । (पश्चात् अभयम्) पश्चिम दिशा में हम को अभय हो । (पुरस्तात् अभयम्) पूर्व दिशा में अभय (उत्तरात्) उत्तर दिशा में (अधरात्) उत्तर दिशा से उलटी दक्षिण दिशा में (नो अभयम् अस्तु) हमें अभय हो ।

भावार्थ—हे जगदीश्वर ! अन्तरिक्ष, द्यु लोक, पृथिवी, पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण दिशा आदि यह सब आपकी कृपा से सदा भय राहित्य को करने वाले हों । हम सब निर्भय होकर आपकी प्रेम भक्ति में और सब के उपकार करने में लग जावें, जिससे हमारा सब का कल्याण हो ॥५॥

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं पुरो यः। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु। ॥६॥१९।१५।६॥

शब्दार्थ—(मित्रात् अभयं) मित्र से अभय हो (अमित्रात् अभयम्) शत्रु से अभय (ज्ञातात् अभयम्) द्वेष्टा रूप से ज्ञात शत्रु से अभय (यः पुरः) ज्ञात से अन्य जो अज्ञात शत्रु उस से भी अभय हो,(नक्तम्) रात्रि में (अभयम्) अभय हो (दिवा नः अभयम्) दिन में हम को भयराहित्य हो (सर्वा आशाः) सब दिशा (मम मित्रं भवन्तु) मेरी हितकारिणी होवें।

भावार्थ—हे सर्व भय हर्ता परमात्मन्! मित्र से हमें अभय, अर्थात् भय से अन्य

हितफल, सर्वदा प्राप्त हो। शत्रु से अभय हो, जो ज्ञात शत्रु है उससे तथा अज्ञात शत्रु से भी भय राहित्य हो, रात्रि में तथा दिन में अभय हो। पूर्व पश्चिम आदि सब दिशा, हमारे हित के करने वाली हों। यह सब फल आप की कृपा से प्राप्त हो सकते हैं, आपकी कृपा के विना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता॥६

शान्ता द्यौः शान्ता पृथिवी शान्तमिदमुर्वन्तरिक्षम्। शान्ता उदन्वतीरापः शान्ता नः सन्त्वोषधीः ॥७॥ १९।९।१॥

शब्दार्थ—(शान्ता द्यौः) हमारे लिये द्युलोक सुखकारक हो, (शान्ता पृथिवी) भूमि सुखकारक हो, (शान्तम् इदम् उरु अन्तरिक्षम्) यह विस्तीर्ण मध्य लोक सुख-

कारक हो, (शान्ता उदन्वतीः आपः) समुद्र और सब जल सुखकारक हों (शान्ता नः सन्तु ओषधीः) हमारे लिये गेहूं चावल आदि सब परिपक्व अन्न सुखकारक हों।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन्! आप की कृपा से द्युलोक, भूमि, अन्तरिक्ष, समुद्र, जल और सब प्रकार के अन्न, हमें सुखदायक हों। सब स्थानों में हम सुखी रहकर, आप के अनन्त उपकारों को स्मरण करते हुए, आपके ध्यान में मग्न रहें, आपसे कभी विमुख न होवें, ऐसी हम सब पर कृपा करो ॥७॥

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥
॥८॥ ११।४।१॥

शब्दार्थ—(प्राणाय नमः) चेतनस्वरूप प्राणतुल्य सर्वप्रिय और सब को प्राण देनेवाले परमेश्वर को हमारा नमस्कार है, (यस्य सर्व मिदं वशे) जिस प्रभु के वश में यह सब जगत् वर्तमान है, (यः भूतः) जो सत्य एक रस परमार्थ स्वरूप और (सर्वस्य ईश्वरः) सब का स्वामी है (यस्मिन्) जिस आधार स्वरूप प्रभु में (सर्वं प्रतिष्ठितम्) यह सब चराचर जगत् स्थित हो रहा है ।

भावार्थ—हे परम पूजनीय चैतन्यमय परमप्रिय परमात्मन् ! आपको हमारा नमस्कार है, अनेक ब्रह्माण्डरूप जगत् के स्वामी आप हैं, आपके ही आधीन यह सब कुछ है और आप ही इसके अधिष्ठान हैं, क्षण भर भी आपके बिना यह जगत् नहीं ठहर सकता ॥८॥

या ते प्राण प्रिया तनूर्यो ते प्राण प्रेयसी।
अथो यद् भेषजं तव तस्य नो धेहि जीवसे॥९

११।४।९॥

शब्दार्थ—(या ते प्राण प्रिया तनूः) हे प्राणप्रिय परमात्मन्! जो आपका स्वरूप प्यारा है (या उ ते प्राण प्रेयसी) और जो आपका स्वरूप अतिप्रिय है (अथो यद् भेषजम् तव) और आपका अमृतत्व प्रापक जो औषध है (तस्य नो धेहि जीवसे) वह हमें जीवन के लिये दो।

भावार्थ—हे परम प्यारे परमात्मन्! संसार भर में आप जैसा कोई प्यारा नहीं है, प्यारे से भी प्यारे आप हैं। जो महापुरुष आप से प्यार करते हैं, उनको अमृतत्व साधन

अपनी अनन्य भक्ति और ज्ञान रूप औषध का दान आप करते हैं, जिसको प्राप्त होकर, वे महात्मा सदा आनन्द में मग्न रहते हैं ॥९॥

प्राणः प्रजा अनु वस्ते पिता पुत्रमिव प्रियम्। प्राणो ह सर्वस्येश्वरो यच्च प्राणति यच्च न ॥१०॥ ११।४।१०॥

शब्दार्थ—(पिता पुत्रम् इव प्रियम्) जैसे दयालु पिता अपने प्यारे पुत्र को वस्त्र से आच्छादन करता है, ऐसे ही (प्राणः) चेतन स्वरूप प्राण देव प्रभु (प्रजा अनुवस्ते) मनुष्य पशु पक्षी आदि प्रजाओं के शरीरों में व्याप्त होकर वस रहा है, (यत् च प्राणति) और जो जङ्गम वस्तु चलन आदि व्यापार कर रही है (यत् च न) और जो स्थावर

वस्तु वह व्यापार नहीं करती, (प्राणः ह सर्वस्य ईश्वरः) उस चर, अचर स्वरूप सब जगत् का चेतन स्वरूप प्राण ही ईश्वर है, अर्थात् सब का प्रेरक स्वामी है।

भावार्थ—हे परमेश्वर आप चराचर सब जगत् में व्याप रहे हैं, ऐसी कोई वस्तु वा स्थान नहीं, जहां आप की व्याप्ति न हो, आप ही सारे संसार के कर्ता, हर्ता और स्वामी हैं, सब की क्षण २ चेष्टाओं को देख रहे हैं, आप से किसी की कोई बात भी छिपी नहीं, इसलिये हमें सदाचारी और अपना प्रेमी भक्त बनावें, जिन को देखकर आप प्रसन्न होवें ॥१०॥

प्राणो विराट् प्राणो देष्ट्री प्राणं सर्वे

उपासते। प्राणो ह सूर्यश्चन्द्रमाः प्राणमाहुः प्रजापतिम् ॥९१॥ ११।४।१२॥

भावार्थ—(प्राणः विराट्) प्राण ही सर्वत्र विशेष रूप से प्रकाशमान है। (प्राणः देष्ट्री) प्राण सब प्राणियों को अपने २ व्यापार में प्रेरणा कर रहा है, (प्राणं सर्वे उपासते) ऐसे प्राण परमात्मा की सब लोग उपासना करते हैं, (प्राणः ह सूर्यः) प्राण ही सब जगत् का प्रकाशक और प्रेरक सूर्य है, (चन्द्रमाः) सब को आनन्द देने वाला प्राण ही चन्द्रमा है (प्राणम् आहुः प्रजापतिम्) वेद और वेदज्ञाता महापुरुष, इस प्राण को ही सब प्रजाओं का जनक और स्वामी कहते हैं।

भावार्थ—हे चेतन देव जगत्पते प्रभो ! आप सब स्थानों में प्रकाशमान हो रहे हैं, आप ही सब प्राणियों को अपने २ व्यापारों में प्रेर रहे हैं, आपकी ही सब विद्वान् पुरुष उपासना करते हैं, आप ही सब जगत् के प्रकाशक और प्रेरक होने से सूर्य, और आनन्द दायक होने से चन्द्रमा कहलाते हैं, सब महात्मा लोग, आपको ही सब प्रजाओं का कर्ता और स्वामी कहते हैं ॥११॥

प्राणो मृत्युः प्राणस्तक्मा प्राणं देवा उपासते । प्राणो ह सत्यवादिनमुत्तमे लोक आ दधत् ॥ १२ ॥ ११।४।११॥

शब्दार्थ—(प्राणो मृत्युः) प्राण ही मृत्यु है । (प्राणः तक्मा) प्राण ही आनन्द करने

वाला है। (देवाः प्राणं उपासते) विद्वान् लोग सब के जीवन हेतु ईश्वर की उपासना करते हैं। (प्राणः ह) प्राण ही निश्चय से (सत्यवादिनम्) सत्यवादी मनुष्य को (उत्तमे लोके) उत्तम शरीर में अथवा श्रेष्ठ स्थान में (आ दधत्) धारण कराता है।

भावार्थ—वेदान्त शास्त्र निर्माता व्यास जी महाराज लिखते हैं, 'अतएव प्राणः', जगत् की उत्पत्ति स्थिति प्रलयादि कर्ता होने से प्राण शब्द का अर्थ परमात्मा जानना चाहिये न कि प्राण वायु। इसलिये सब चेष्टाओं का कारण होने से परमात्मा का नाम प्राण है। ऐसा परमेश्वर ही हमारे जन्म मृत्यु का और सांसारिक अनेक विध सुख का दाता है। प्राणरूप परमेश्वर ही

सत्यवादी, सत्यकर्ता, सत्यमानी, और सच्चाई के ही प्रचार करने वाले पुरुष को उत्तम लोक प्राप्त कराता है। लोक शब्द का अर्थ उत्तम शरीर, उत्तम ज्ञान, और उत्तम स्थान है। यह बात निश्चित है कि ऐसे पुरुष को परमात्मा उत्तम लोक आदि प्राप्त कराता है ॥ १२ ॥

बृहन्नेषामधिष्ठाता अन्तिकादिव पश्यति। यस्तायन्मन्यते चरन्तसर्वं देवा इदं विदुः ॥१३॥ ४।१६।१॥

शब्दार्थ—(बृहन्) महान् वरुण श्रेष्ठ (एषाम् अधिष्ठाता) इन सब प्राणियों का नियन्ता प्रभु सब प्राणियों के कर्मों को

(आन्तिकादिव पश्यति) समीपता से ही जानता है (यः तायन् मन्यते) जो वरुण स्थिर वस्तु को जानता है (चरन्) चरण-शील को भी जानता है (सर्वं देवा इदं विदुः) चर अचर स्थूल सूक्ष्म सब वस्तु मात्र को वरुण देव प्रभु जानते हैं।

भावार्थ—हे सर्वत्र व्यापक वरुण श्रेष्ठ प्रभो! आप प्राणि मात्र के नियन्ता और इन सब के कर्मों को सब प्रकार से जानने वाले जिन से किसी का कोई काम भी छिपा नहीं है, दूरस्थ समीपस्थ चर अचर स्थूल सूक्ष्म इन सब ब्रह्माण्डस्थ पदार्थ मात्र को जानने वाले सर्वत्र व्यापक महान् सब से श्रेष्ठ सब के उपासनीय भी आप ही हैं॥ १३॥

यस्तिष्ठति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्। द्वौ संनिषद्य यन्मन्त्रयेते राजा तद् वेद वरुणस्तृतीयः ॥१४॥

४।१६।२॥

शब्दार्थ—(यः तिष्ठति) जो खड़ा है (चरति) जो चलता है (यः वञ्चति) और जो ठगता है (यो निलायं चरति) जो निलीन अर्थात् अदृश्य होकर चलता है (यः प्रतङ्कम) जो कष्ट से वर्त्तता है इन सब को वरुण प्रभु जानते हैं (द्वौ संनिषद्य) दो पुरुष बैठकर (यत् मन्त्रयेते) जो अच्छा वा बुरा गुप्त मन्त्रण करते हैं (तृतीयः वरुणः राजा) उन में तीसरे वरुण श्रेष्ठ राजा प्रभु (तद् वेद) अपनी सर्वज्ञता से उन सब को जानते हैं ॥

भावार्थ—हे वरुण राजन्! जो खड़ा वा चलता वा ठगता वा छिप कर चलता वा दुःख से जीता है, इन सब को आप जानते हैं, जो दो पुरुष मिल कर, अच्छी वा बुरी गुप्त सलाह करते हैं, उन दोनों में तीसरे होकर आप वरुण राजा उन सब को जानते हैं ॥ १४ ॥

उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञ उतासौ द्यौर्बृहती दूरे अन्ता। उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः ॥१५॥

४।१६।३॥

शब्दार्थ—(उत इयं भूमिः) और यह सम्पूर्ण पृथिवी (वरुणस्य राज्ञः) वरुण राजा के वश में वर्त्तमान है (दूरे अन्ता) जिसके

किनारे बहुत दूर हैं (उत असौ बृहती द्यौः) ऐसा यह बड़ा द्युलोक भी जिस वरुण राजा के वश में है (उतो समुद्रौ) पूर्व और पश्चिम दिशाओं के दोनों समुद्र (वरुणस्य कुक्षी) वरुण राजा का उदर रूप हैं (उत अस्मिन् अल्पे उदके) इस थोड़े से जल में भी (निलीनः) वह वरुण राजा अन्तर स्थित होकर वर्तमान है ।

भावार्थ—हे अनन्त वरुण राजन् ! यह सम्पूर्ण पृथिवी और जिसका अन्त नहीं ऐसा बड़ा यह द्युलोक तथा पूर्व पश्चिम के दोनों समुद्र, आप वरुण राजा के वश में वर्त्तमान हैं। हे प्रभो ! आप ही वापी कूपादि थोड़े जलों में भी वर्त्तमान हैं, ऐसे सर्वव्यापक आप को जान कर ही हम सुखी हो सकते हैं ॥१५॥

उत यो द्यामतिसर्पात् परस्तान्न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः। दिव स्पशः प्र चरन्तीदमस्य सहस्राक्षा अति पश्यन्ति भूमिम्॥१६॥

४।१६।४॥

शब्दार्थ—(उत यो द्याम् अतिसर्पात् परस्तात्) जो पुरुष द्युलोक से भी परे चला जाय (न स मुच्यातै वरुणस्य राज्ञः) वह भी वरुण राजा से छूट नहीं सकता। (दिवः स्पशः प्रचरन्ति इदम् अस्य) इस वरुण के गुप्तचर दूत द्युलोक से निकल, इस पार्थिव स्थान को प्राप्त होकर (सहस्राक्षाः) हजारों आंखों वाले (भूमिम् अतिपश्यन्ति) पृथिवी को अत्यन्त देखते हैं अर्थात् पृथिवी के सब वृत्तान्त को जानते हैं।

भावार्थ—हे वरुण श्रेष्ठ प्रभो ! यदि कोई पुरुष द्युलोक से भी परे चला जाय, तो भी आप से कभी छूट नहीं सकता, आपके गुप्तचर दूत अर्थात् आप की दिव्य शक्तियें, द्युलोक और पृथ्वीलोक में सर्वत्र व्यापक हो रही हैं, उन शक्तियों द्वारा आप सब को जानते हैं,आप से अज्ञात कुछ भी नहीं है॥१६॥

सर्वं तद् राजा वरुणो वि चष्टे यदन्तरा रोदसी यत् परस्तात्। संख्याता अस्य निमिषो जनानामक्षानिव श्वघ्नी नि मिनोति तानि ॥१७॥ ४।१६।५॥

शब्दार्थ—(रोदसी अन्तरा यत्) द्युलोक और पृथिवी लोक के मध्य में जो प्राणिमात्र वर्तमान है (यत् परस्तात्) और हमारे

सम्मुख वा हमसे परे वर्तमान है (सर्व तद्) उस सब को (वरुणः राजा विचष्टे) वरुण राजा भले प्रकार देखते हैं, (जनानाम् निमिषः) प्राणियों के नेत्रस्पन्दादि सर्व व्यवहार (अस्य संख्याताः) इस वरुण के गिने हुए हैं (श्वघ्नी अक्षान् इव तानि निमिनोति) जैसे जुआरी अपने जय के लिये जुए के पासों को फेंकता है, ऐसे ही सब प्राणियों के पुण्य पाप कर्मों के फलों को वरुण राजा देते हैं।

भावार्थ—हे श्रेष्ठ प्रभो! ऊपर का द्युलोक नीचे का पृथिवी लोक और इन दोनों में जो प्राणिमात्र वर्तमान हैं और जो हमारे सम्मुख वा हम से परे वर्तमान हैं इन सब को आप अपनी सर्वज्ञता से देख रहे हैं।

जैसे कोई जुआरी पासों को जानकर फेंकता है ऐसे आप ही प्राणियों के शुभाशुभ कर्मों के फल-प्रदाता हैं ॥१७॥

कविर्तरो न मेधया धीरतरो वरुण स्वधावन् । त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ स चिन्नु त्वज्जनो मायी बिभाय ॥१८॥

५।११।४॥

शब्दार्थ—(स्वधावन् वरुण) हे प्रकृति के स्वामिन् वरुण ! (न त्वत् अन्यः कवितरः) आपसे बढ़कर कोई सर्वज्ञ नहीं है (न मेधया धीरतरः) न बुद्धि में आप से बढ़कर कोई बुद्धिमान् है (त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ) आप उन सब ब्रह्माण्डों को भले प्रकार जानते हैं (सः चित् नु त्वत् जनः

मायी विभाय) वह जो अनेक प्रकार की प्रज्ञा वाला है वह भी आप से डरता है ।

भावार्थ—हे स्वामिन् वरुण ! आपसे बढ़कर न कोई बुद्धिमान् है, आप उन सब ब्रह्माण्डों और उनमें रहनेवाले सब प्राणियों को ठीक-ठीक जानने वाले हैं । कोई पुरुष कैसा ही बुद्धिमान् चालाक वा छली, कपटी क्यों न हो, वह भी आपसे डरता है ॥१८॥

अकामो धीरो अमृतः स्वयंभू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः । तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥१९॥

१०।८।४४॥

शब्दार्थ—(अकामः) प्रभु सब काम-

नाओं से रहित हैं, (धीरः) धीर, बुद्धि के प्रेरक हैं (अमृतः) अमर हैं ('स्वयं भवतीति' स्वयंभूः) आप ही होते हैं किसी से उत्पन्न होकर सत्ता को नहीं प्राप्त होते अर्थात् अजन्मा हैं (रसेन तृप्तः) आनन्द से तृप्त हैं (न कुतः च न ऊनः) किसी से भी न्यून नहीं हैं। (तम् धीरम् अजरम् युवानम् आत्मानम्) उस धीर जरा रहित युवा आत्मा आप प्रभु को (विद्वान् एव) जानने वाला ही (मृत्योः न बिभाय) मृत्यु से नहीं डरता।

भावार्थ—हे भयहारिन् परमात्मन्! आप अकाम, धीर, अमर और अजन्मा हैं सदा आनन्द से तृप्त हैं, आप में कोई न्यूनता नहीं है। आप जो कि धीर, अजर, युवा, अर्थात् सदा एक रस आत्मा का जानने

वाला महात्मा ही, मृत्यु से कभी नहीं डरता। आप निर्भय हैं, आप को जानने वा मानने वाला महापुरुष भी निर्भय हो जाता है ॥१९॥

भद्राहं नो मध्यन्दिने भद्राहं सायमस्तु नः।
भद्राहं नो अह्नां प्राता रात्री भद्राहमस्तु नः॥
२०॥ ६।१२८।२॥

शब्दार्थ—(नः) हमारे लिये (मध्यं दिने) मध्याह्न काल में (भद्राहम्) शोभन दिन अर्थात् सुखद दिन हो तथा (नः) हमारे लिये (सायम्) सूर्य के अस्तकाल में भी (भद्राहम् अस्तु) पवित्र दिन हो तथा (अह्नाम् प्रातः) दिनों के प्रातःकाल में भी (नः) हमारे लिये (भद्राहम्) पवित्र दिन हो तथा (रात्री) सब (रात्री नः)

हमारे लिये (भद्राहम्) शुभ समय वाली हों।

भावार्थ—हे दयामय परमात्मन्! आपकी कृपा से हमारे लिये प्रातःकाल, मध्याह्नकाल, सायंकाल और रात्रीकाल शुभ हों, अर्थात् सब काल में हम सुखी हों और आपको सदा स्मरण करते तथा आपकी वैदिक आज्ञा का पालन करते हुए पवित्रात्मा बनें, कभी आपको भूलकर आपकी आज्ञा से विरुद्ध चलने वाले न बनें और अपने समय को व्यर्थ न खोवें। ऐसी हमारी प्रार्थना को आप कृपा कर स्वीकार करें ॥२०॥

धाता दधातु नो रयिमीशानो जगतस्पतिः।
स नः पूर्णेन यच्छतु ॥२१॥ ७।१७।१॥

शब्दार्थ—(धाता) सारे संसार का धारण

करने वाला परमात्मा (नः) हमारे लिये (रयिम्) विद्या सुवर्णादि धन को (दधातु) धारण करे अर्थात् देवे, वही प्रभु (ईशानः) सब के मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ और (जगतस्पतिः) जगत् का पालक है (सः) वह (नः) हमें (पूर्णेन) वृद्धि को प्राप्त हुए धन से (यच्छतु) जोड़ देवे अर्थात् हम को पूर्ण धनी बनावे।

भावार्थ—हे सर्वजगत् धारक परमात्मन्! हम आर्य लोग जो आपकी सदा से कृपा के पात्र रहे हैं जिन पर आपकी सदा कृपा बनी रही है, ऐसे आपके प्यारे पुत्रों को विद्या आदि धन प्रदान करें, क्योंकि आप महा समर्थ और शरणागतों के सब मनोरथों को पूर्ण करने वाले हैं, हम भी आपकी शरण

में आये हैं, इसलिये आप सब के स्वामी हमको पूर्ण धनी बनाओ, जिससे हम किसी पदार्थ की न्यूनता से कभी दुःखी वा पराधीन न होवें, किन्तु सदा सुखी हुए आपके ध्यान में तत्पर रहें ॥ २१ ॥

यो अग्नौ रुद्रो यो अप्स्व१न्तर्य ओषधीर्वीरुध आविवेश । य इमा विश्वा भुवनानि चाक्लृपे तस्मै रुद्राय नमो अस्त्वग्नये ॥२२॥

७।८७।१॥

शब्दार्थ—(यः रुद्रः अग्नौ) जो दुष्टों को रुदन कराने वाला रुद्र भगवान्, अग्नि में (यः अप्सु अन्तः) जो जलों के मध्य में (यः वीरुध ओषधीः) जो अनेक प्रकार से उत्पन्न होने वाली ओषधियों में (आविवेश)

प्रविष्ट हो रहा है, (यः इमा विश्वा भुवनानि) जो रुद्र इन दृश्यमान सर्व भूतों के उत्पन्न करने में (चाक्लृपे) समर्थ है (तस्मै रुद्राय नमो अस्तु अग्नये) उस सर्व जगत् में प्रविष्ट ज्ञान स्वरूप रुद्र के प्रति हमारा वारंवार नमस्कार हो।

भावार्थ—हे दुष्टों को रुलाने वाले रुद्र प्रभो! आप अग्नि जल और अनेक प्रकार की ओषधियों में प्रविष्ट हो रहे हैं और आप चराचर सब भूतों के उत्पन्न करने में महा समर्थ हैं, इसलिये सर्वजगत् के स्रष्टा और सब में प्रविष्ट ज्ञान स्वरूप ज्ञान प्रद आप रुद्र भगवान् को हम वारंवार सविनय प्रणाम करते हैं, कृपा कर के इस प्रणाम को स्वीकार करें॥ २२॥

पश्चात् पुरस्तादधरादुतोत्तरात् कविः काव्येन परि पाह्यग्ने । सखा सखायमजरो जरिम्णे अग्ने मर्ताँ अमर्त्यस्त्वं नः ॥२३॥ ८।३।२०॥

शब्दार्थ—हे अग्ने ! (पश्चात्) पश्चिम (पुरस्तात्) पूर्व (अधरात्) नीचे वा दक्षिण (उत्तरात्) उत्तर दिशा से (कविः) सर्वज्ञ आप (काव्येन) अपनी सर्वज्ञता और रक्षण व्यापार कर के (परिपाहि) सर्वथा रक्षा करें (सखा) हमारे सखा रूप आप (सखायम्) और आपके सखा रूप जो हम उनकी रक्षा कीजिये (अजरः) जरा वृद्धावस्था से रहित आप (जरिम्णे) अत्यन्त जीर्ण जो हम उनकी रक्षा कीजिये (अमर्त्यः त्वम्) अमर आप (मर्तान् नः) मरण धर्मा जो हम उनकी रक्षा कीजिये ।

भावार्थ—हे ज्ञानमय ज्ञान प्रद परमात्मन्! आप अपनी सर्वज्ञता और रक्षा से पूर्व आदि सब दिशाओं में हमारी रक्षा करें। आप ही हमारे सच्चे मित्र हैं, आप जरा मरण से रहित अजर अमर हैं, हम तो जरा मरण युक्त हैं आपके विना हमारा कोई रक्षक नहीं, हम आपके शरण आये हैं आप ही रक्षा करें ॥२३॥

द्यौष्ट्वा पिता पृथिवी माता जरामृत्युं कृणुतां संविदाने। यथा जीवा अदितेरुपस्थे प्राणापानाभ्यां गुपितः शतं हिमाः ॥२४॥ २।२८।४॥

शब्दार्थ—हे मनुष्य! (त्वा) तुमको (द्यौः पिता) द्यु लोक पिता (पृथिवी माता)

माता रूप पृथिवी (संविदाने) आपस में एकता को प्राप्त हुए (जरा मृत्यु कृणुताम्) वृद्धावस्था पूर्वक मृत्यु को करें अर्थात् दीर्घ आयु वाला करें (अदितेः) अखण्डनीय पृथिवी के (उपस्थे) गोद में (प्राणापानाभ्यां गुपितः) प्राण अपान से रक्षित हुआ (शतं हिमाः) सौ वर्ष पर्यन्त (यथा जीवाः) जिस प्रकार से तू जीवन धारण करे वैसे तुझे द्युलोक और पृथिवी दीर्घ आयु वाला करें।

भावार्थ—परमेश्वर मनुष्य को आशीर्वाद देते हैं कि, हे मनुष्य! जैसे पुरुष अपनी माता से उत्पन्न होकर उस माता की गोद में स्थित रहता है और अपने पिता से पालन पोषण को प्राप्त होता है, ऐसे ही पृथिवी रूपी माता से उत्पन्न होकर, उस

पृथिवी की गोद में रहता हुआ तू मनुष्य द्युलोक रूप पिता से पालन पोषण को प्राप्त हो रहा है। द्युलोक और पृथिवी तेरे अनुकूल हुए, सौ वर्ष पर्यन्त जीने में सहायता करें। तू सारी आयु में अच्छे २ कर्म करता हुआ, ब्रह्म ज्ञान द्वारा मोक्ष सुख को प्राप्त हो ॥ २४ ॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः।
शुचिः पावक ईड्यः ॥२५॥ ८।३।२६॥

शब्दार्थ—(अग्निः) यह ज्ञान स्वरूप परमात्मा (रक्षांसि) नाना प्रकार से दुःखदायक जो दुष्ट पापी राक्षस उनको (सेधति) विनाश करता है। कैसा है वह प्रभु, जो (शुक्रशोचिः) प्रज्वलित प्रकाश स्वरूप और (अमर्त्यः) मरण

से रहित (शोचिः) शुद्ध (पावकः) शुद्ध करने वाला (ईड्यः) स्तुति करने योग्य है ।

भावार्थ—हे दुष्ट विनाशक पतित पावन ज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! ज्ञान स्वरूप, दुष्ट राक्षसों के नाश करने वाले, अमर, शुद्ध स्वरूप, शरणागत पतितों के भी पावन करने वाले, संसार में आप ही स्तुति करने योग्य हैं। धर्म अर्थ काम मोक्ष यह चार पुरुषार्थ आपकी स्तुति प्रार्थना उपासना से ही प्राप्त होते हैं अन्य की स्तुति से नहीं, इस लिये हम लोग, आपको ही मोक्ष आदि सब सुख दाता जान कर, आपके ही शरणागत हुए, आपकी स्तुति प्रार्थना उपासना करते हैं ॥ २५ ॥

सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिं-
वाघ्न्या ॥२६॥ ३।३०।१॥

शब्दार्थ—हे मनुष्यो ! (वः) तुम्हारा (सहृ-
दयम्) जैसे अपने लिये सुख चाहते हो ऐसे
दूसरों के लिये भी समान हृदय रहो (सांम-
नस्यम्) मन से सम्यक् प्रसन्नता और (अवि-
द्वेषम्) वैर विरोध आदि रहित व्यवहार को
आप लोगों के लिये (कृणोमि) स्थिर करता
हूँ तुम (अघ्न्या) हनन न करने योग्य गाय
(वत्सं जातमिव) उत्पन्न हुए बछड़े पर प्रेम
से जैसे वर्तती है वैसे (अन्योऽन्यम्) एक
दूसरे से (अभिहर्यत) प्रेमपूर्वक कामना से
वर्ता करो।

भावार्थ—परमकृपालु परमात्मा हमें उप-

देश देते हैं कि, हे मेरे प्यारे पुत्रो! तुम लोग आपस में एक दूसरे के सहायक और आपस में प्रेम करने वाले बनो, आपस में वैर विरोध आदि कभी मत करो, जैसे गौ अपने नवीन उत्पन्न हुए बछड़े से अत्यन्त प्रेम करती और उसकी सर्वथा रक्षा करती है, ऐसे आप लोग आपस में परम प्रेम करते हुए एक दूसरे की रक्षा करो, कभी आपस में वैर विरोध आदि न किया करो, तभी आप लोगों का कल्याण होगा अन्यथा कभी नहीं। यह उपदेश आपका कल्याण करने वाला है इसको कभी मत भूलो सदा याद रखो।

ब्रह्मणा भूमिर्विहिता ब्रह्म द्यौरुत्तरा हिता।

ब्रह्मेदमूर्ध्वं तिर्यक् चान्तरिक्षं व्यचो हितम् ॥२७॥ १०।२।२५॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मणा) परमात्मा ने (भूमिः) पृथिवी (विहिता) बनाई (ब्रह्म) परमेश्वर ने (द्यौः) द्युलोक को (उत्तरा) ऊपर (हिता) स्थापित किया (ब्रह्म) परमात्मा ने ही (इदम्) यह (अन्तरिक्षम्) मध्य लोक (ऊर्ध्वम्) ऊपर (तिर्यक्) तिरछा और नीचे (व्यचो हितम्) व्यापा हुआ रक्खा है।

भावार्थ—एशिया, युरोप, अमरीका और अफ्रीका आदि खण्डों से युक्त सारी पृथिवी और पृथिवी में रहने वाले सारे प्राणी परमात्मा ने रचे हैं। उस परमात्मा ने ही सूर्य से ऊपर का हिस्सा जिसको द्युलोक कहते हैं

वह भी ऊपर स्थापित किया और मध्य का यह अन्तरिक्ष लोक जो ऊपर और नीचे तिरछा सब फैला हुआ है उस परमात्मा ने बनाया ॥२७॥

पूर्णात् पूर्णमुदचति पूर्णं पूर्णेन सिच्यते ।
उतो तदुद्य विंद्याम यतस्तत् परिपिच्यते॥२८॥
१०।८।२९॥

शब्दार्थ—(पूर्णात्) सर्वत्र व्यापक परमात्मा से (पूर्णम्) पूर्ण यह जगत् (उदचति) उदय होता है (पूर्णम्) यह पूर्ण जगत् (पूर्णेन) पूर्ण परमात्मा से (सिच्यते) सींचा जाता है । (उतो तदद्य विद्याम्) नियम से आज हम जानेंगे (यतः) जिस परमात्मा से (तत्) वह जगत् (परिपिच्यते) सींचा जाता है ।

भावार्थ—सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा से यह संसार सर्वत्र पूर्णतया उत्पन्न हुआ। उस पूर्ण परमात्मा ने ही इस जगत् रूपी वृक्ष का सिंचन किया है उस परमात्मा के जानने में हमें विलम्ब नहीं करना चाहिये क्योंकि, हमारे सब के शरीर क्षण भंगुर हैं। ऐसा न हो कि हमारी मन की मन में रह जाय और हमारा शरीर नष्ट हो जाय। इस लिये वेद ने कहा 'तद्य विद्याम्,' उस परमात्मा को मैं आज ही जान लूँ॥ २८॥

यतः सूर्य उदेत्यस्तं यत्र च गच्छति।
तदेव मन्येहं ज्येष्ठं तदु नात्येति किं चन॥२९॥
१०।८।१६॥

शब्दार्थ—(यतः) जिस परमात्मा की

प्रेरणा से (सूर्यः) सूर्य (उदेति) उदय होता है (अस्तम्) अस्त को (यत्र) जिसमें (गच्छति) प्राप्त होता है। (तत् एव) उसको ही (ज्येष्ठम्) सब से बड़ा (अहम् मन्ये) मैं मानता हूँ (तत् उ) उसको (किंचन) कोई भी (नात्येति), उल्लङ्घन नहीं कर सकता।

भावार्थ—जिस सर्वशक्तिमान् जगदीश्वर ने यह तेजःपुंज सूर्य उत्पन्न किया, जिस जगदीश्वर की प्रेरणा से यही सूर्य अस्त होता है, उस परमात्मा को ही मैं सब से श्रेष्ठ और सब से बड़ा मानता हूँ। ऐसे समर्थ प्रभु को कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। उसकी आज्ञा में ही सारे सूर्य, चन्द्र आदि सब लोक लोकान्तर वर्तमान हैं। उस पर-

मात्मा को उल्लंघन करने की किसी की शक्ति नहीं है ॥ २९ ॥

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति ।
देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति॥३०॥
१०।८।३२॥

शब्दार्थ—ईश्वर (अन्ति सन्तम्) पास रहने वाले उपासक को (न जहाति) छोड़ता नहीं (अन्ति सन्तम्) पास रहने वाले भगवान् को जीव (न पश्यति) देखता नहीं । (देवस्य) परमात्मा के (काव्यम्) वेद रूप काव्य को (पश्य) देख (न ममार) मरता नहीं और (न जीर्यति) न ही बूढ़ा होता है ।

भावार्थ—जो ईश्वर का भक्त ईश्वर की

भक्ति करता है वह परमेश्वर के समीप है। उस पर परमात्मा सदा कृपादृष्टि रखते हैं यही उनका न छोड़ना है। अज्ञानी नास्तिक लोग जो ईश्वर की भक्ति से हीन हैं वे परमात्मा के सर्वव्यापक होने से सदा समीप वर्तमान को भी वे नहीं जान सकते। यह परमात्मा अजर अमर है उसका काव्य वेद भी सदा अजर अमर है। मुमुक्षु जनों को चाहिये कि उस अजर अमर परमात्मा के अजर अमर काव्य को सदा विचारा करें जिससे लोक परलोक सुधर सकें ॥ ३० ॥

अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वंदन्ति यथायथम्।
वदन्तीर्यत्र गच्छन्ति तदाहुर्ब्राह्मणं महत् ॥२१

१०।८।३३॥

शब्दार्थ—(अपूर्व्येण) जिससे पूर्व कोई नहीं है। सब का मूल कारण जो परमात्मा उससे (इषिताः) प्रेरित (वाचः) वेदवाणी है (यथा यथम्) यथा योग्य अर्थात् यथार्थ बात को (ताः) वे (वदन्ति) कहती हैं। (वदन्तीः) निरूपण करने वाली वेदवाणियां (यत्र गच्छन्ति) जो २ निरूपण करती हैं (तत् महत्) उस बड़े (ब्राह्मणम्) ब्रह्म को (आहुः) निरूपण करती हैं।

भावार्थ—परमात्मा सब का कारण और अनादि है। उससे पहले कोई भी न था। उस दयामय परमात्मा ने हम पर कृपा करके यथार्थ अर्थ के निरूपण करने वाले वेद प्रकट किये। वह वैदिक ज्ञान जहाँ २ प्रचार को प्राप्त हुआ उस २ देश के पुरुषों

को आस्तिक धार्मिक और ज्ञानी बना दिया। उन ज्ञानी पुरुषों ने ही यथाशक्ति वैदिक-सभ्यता फैलाई। जिस सभ्यता का कुछ २ प्रतिभास योरप, अमरीका आदि देशों में दिखाई देता है। यदि उन देशों में वैदिक-ज्ञान पूरा २ फैल जावे तो वह सब मनुष्य पूरे धार्मिक, आस्तिक, और ज्ञानी बन कर अपने देशों का उद्धार कर सकें ॥३१॥

देवाः पितरो मनुष्या गन्धर्वाप्सरसश्च ये ।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥
॥३२॥ ११।७।२७॥

शब्दार्थ—(देवाः) विद्वान्-लोग (पितरः) ज्ञानी लोग (मनुष्याः) साधारण मनुष्य (च) और (गन्धर्वाः) गाने वाले (अप्सरसः)

आकाश में चलने वाले पुरुप हैं, ये सब (दिवि) आकाश में वर्तमान (दिविश्रितः) सूर्य के आकर्पण में ठहरे हुए (सर्वे देवाः) सब गतिमान लोक (उच्छिष्टात्) परमात्मा से (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं।

भावार्थ—बड़े बड़े भारी विद्वान् और पृथिवी आदि लोक ज्ञानी और मननशील मनुष्य, गाने बजाने वाले और आकाश में विचरने वाले पुरुप जो हैं ये सब उस जगदीश्वर से उत्पन्न होकर सूर्य के आकर्पण में ठहरे हुए उस परमात्मा के आश्रय में वर्तमान हैं॥३२॥

यच्च प्राणति प्राणेन यच्च पश्यति चक्षुषा।
उच्छिष्टाज्जज्ञिरे सर्वे दिवि देवा दिविश्रितः॥
॥३३॥ ११।७।२३॥

शब्दार्थ—(यत् च) जो प्राणी (प्राणेन) प्राणवायु से (प्राणति) श्वासों के ऊपर नीचे आना जाना रूप व्यापार को करता है अथवा घ्राण इन्द्रिय से गन्ध को सूंघता है (यत् च पश्यति चक्षुषा) और जो प्राणी नेत्र से नीले पीत आदि रूप को देखता है. (सर्वे) वे सब प्राणी (उत् शिष्टात्) प्रलय काल में ज़गत् के नाश हो जाने पर भी शेष रहा जो ब्रह्म उसी से सृष्टिकाल में (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए तथा (दिवि देवा दिवि श्रिताः) द्युलोक में स्थित द्युलोक में रहने वाले सब देव उसी से उत्पन्न हुए हैं।

भावार्थ—हे सर्वदा अचल जगदीश्वर ! जो प्राणी, प्राणों से श्वास निश्वास लेते और जो घ्राण से गन्ध को सूंघते तथा नेत्र

से नीले पीत आदि रूप को देखते हैं और जो द्युलोकादि में स्थिर होकर वर्तमान देव हैं, वे सब आप से ही उत्पन्न हुए हैं; प्रलय-काल में सब कार्य जगत् के नाश हो जाने पर भी आप वर्तमान रहते और उत्पत्तिकाल में आप ही सारे संसार को उत्पन्न करते हैं ॥२३॥

उच्छिष्टे नाम रूपं चोच्छिष्टे लोक आहितः।
उच्छिष्ट इन्द्रश्चाग्निश्च विश्वमन्तः समाहितम् ॥२४॥ ११।७।१॥

शब्दार्थ—(उच्छिष्टे) बाकी रहे परमात्मा में (नाम) पदार्थों का नाम (रूपम्) और आकार (आहितः) स्थित है। (च) और (उच्छिष्टे लोक आहितः) उसी में पृथिवी

आदि लोक स्थित हैं। (उच्छिष्टे) उस ईश्वर में ही(इन्द्रः च अग्निः) बिजली और अग्नि भी और (विश्वमन्तः समाहितम्) सारा संसार स्थित है।

भावार्थ—प्रभु का नाम उच्छिष्ट इसलिये है कि प्रलयकाल में सब प्राणी और लोक लोकान्तर नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं, परन्तु परमात्मा एक रस वर्तमान रहते हैं। ऐसे सर्वाधार परमात्मा में सब संसार के शब्द रूप नाम, आकार और लोकान्तर भी स्थित हैं। उस भगवान् के आश्रय ही इन्द्र अर्थात् बिजली, वायु जीव, और भौतिकअग्नि स्थित हैं। इस सर्वाधार परमात्मा के आश्रय ही सारा संसार स्थित है ॥३४॥

उच्छिष्टे द्यावापृथिवी विश्वं भूतं समाहितम्।
आपः समुद्र उच्छिष्टे चन्द्रमा वात आहितः॥
॥३५॥ ११।७।२॥

शब्दार्थ—(उच्छिष्टे) उस परमात्मा में (द्यावा पृथिवी) द्युलोक, पृथिवी (विश्वम् भूतम्) सब वस्तुमात्र (समाहितम्) स्थित हैं। (आपः) जल (समुद्रः) समुद्र (चन्द्रमा) चन्द्रमा (वातः) वायु (उच्छिष्टे) उस परमात्मा में (आहितः) स्थित हैं।

भावार्थ—उस परमेश्वर के आश्रय ही सब वस्तुमात्र ठहरी हुई हैं। उसी परमात्मा के आश्रय जल, समुद्र, चन्द्र और वायु ठहरा हुआ है, अर्थात् भूत भौतिक सारा संसार उस परमात्मा के आश्रय ही ठहरा हुआ है ॥३५॥

ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम्।
ब्रह्मेममग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरं ममे ॥३६॥

१०।२।२१॥

शब्दार्थ—(पुरुषः) मनुष्य(ब्रह्म) ज्ञान द्वारा (श्रोत्रियम्) वेद ज्ञानी आचार्य को (आप्नोति) प्राप्त होता है। (ब्रह्म) उस ज्ञान से ही (इमम्) इस (परमेष्ठिनम्) सब से ऊपर ठहरने वाले परमात्मा को प्राप्त होता है। (ब्रह्म) ज्ञान द्वारा (इमम् अग्निम्) इस भौतिक अग्नि को और (ब्रह्म) ज्ञान से ही (पुरुष संवत्सरम्) वर्ष को (ममे) गिनता है।

भावार्थ—इस संसार में चतुर जिज्ञासु पुरुष वेदवेत्ता आचार्य को प्राप्त करता है। उस आचार्य के उपदेश से परम ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है। उस वेद द्वारा ही पुरुष भौतिक अग्नि, सूर्य, बिजली आदि दिव्य ज्योतियों को और उनके कार्यों को जानकर महाविद्वान् हो जाता है॥ ३६॥

यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।
स्वर्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः॥

॥३७॥ १०।८।११॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (भूतम् च भव्यम् च) अतीतकाल भविष्य काल और वर्तमान काल इन तीनों कालों और इन में होने वाले सब पदार्थों को यथावत् जानता है (सर्वं यः च अधितिष्ठति) सब जगत् को जो अपने विज्ञान से उत्पन्न पालन और प्रलयकर्ता, सब का अधिष्ठाता अर्थात् स्वामी है (तस्मै ज्येष्ठाय) उस सब से उत्कृष्ट सब से बड़े (ब्रह्मणे नमः) परमात्मा को हमारा नमस्कार हो।

भावार्थ—हे विज्ञानानन्द स्वरूप परमात्मन्!

आप तीनों कालों और इनमें होने वाले सब पदार्थों के ज्ञाता, अधिष्ठाता, उत्पादक, पालक, प्रलयकर्ता, सुखस्वरूप और सुखदायक हो, ऐसे जगद्वन्द्य जगत् पिता आप परमेश्वर को प्रेम से हमारा वारंवार प्रणाम हो ॥ ३७ ॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् । दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥३८॥ १०।७।३२॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिस परमेश्वर के (भूमिः) पृथिवी आदि पदार्थ (प्रमा) यथार्थ ज्ञान की सिद्धि होने में साधन हैं तथा जिसके भूमी पाद के समान है। (उत्) और (अन्तरिक्षम्) जो सूर्य और पृथिवी के बीच का मध्य आकाश है (उदरम्) उदर स्थानीय है।

(दिवम्) द्युलोक को (यः चक्रे मूर्धानम्)जिस परमात्मा ने मस्तक स्थानीय बनाया है। (तस्मै) उस(ज्येष्ठाय) बड़े (ब्रह्मणे नमः) परमात्मा को हमारा नमस्कार हो।

भावार्थ—हमारे पूज्य गौतमादिक ऋषियों ने जो अनुमान लिखा है 'क्षित्यङ्कुरादिकं कर्तृजन्यं, कार्यत्वात्, घटवत्।' पृथिवी और पृथिवी के बीच वृक्षादिक जितने उत्पत्तिमान् पदार्थ हैं ये सब किसी कर्ता से उत्पन्न हुए हैं, कार्य होने से, घट की तरह। जैसे घट को कुलाल बनाता है वैसे सारे संसार का निमित्त कारण परमात्मा है। उसी भगवान् का बनाया हुआ अन्तरिक्ष लोक उदर स्थानीय है। उसी परमात्मा ने मस्तक रूप द्युलोक को बनाया है। ऐसे महान् ईश्वर को हमारा नमस्कार है॥३८॥

यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।
अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे
नमः ॥२९॥१०।७।३३॥

शब्दार्थ—(पुनर्णवः) सृष्टि के आदि में वारंवार नवीन होने वाला सूर्य और चन्द्रमा (यस्य) जिस परमात्मा के (चक्षुः) नेत्र समान है। (यः) जिस भगवान् ने (अग्निम्) अग्नि को (आस्यम्) मुख समान (चक्रे) रचा है। (तस्मै ज्येष्ठाय) उस सब से बड़े व सब से श्रेष्ठ (ब्रह्मणे नमः) परमात्मा को हमारा नमस्कार है।

भावार्थ—यहां सूर्य और चांद को जो वेद भगवान् ने परमात्मा की आंख बताया है इसका यह अर्थ कभी नहीं कि वह जीव

के तुल्य चर्ममय आंखों वाला है किन्तु जीव की आंखें जैसे जीव के अधीन है ऐसे ही उस परमात्मा के सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, दिशा उपदिशा आदि अधीन हैं। इस कहने से यह तात्पर्य है कि यदि कोई आग्रह से परमेश्वर को साकार मानता हुआ सूर्य चांद उसकी आंखें बतावे तो अमावस की रात्रि में न सूर्य है न चांद है, इसलिये उपर्युक्त कथन ही सच्चा है ॥३९॥

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुराङ्गिरसोऽभवन्।
दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥४०॥ १०।७।३४॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिस भगवान् ने (वातः) ब्रह्माण्ड के वायु को (प्राणापानौ) प्राणापान

के तुल्य बनाया। (अङ्गिरसः) प्रकाश करने वाली जो किरणें हैं वह (चक्षुः अभवन्) आंख की न्याई बनाई। (यः) जो परमेश्वर (दिशः) दिशाओं को (प्रज्ञानी) व्यवहार के साधन सिद्ध करने वाली बनाता है, (तस्मै ज्येष्ठाय) ऐसे बड़े अनन्त (ब्रह्मणे) परमात्मा को (नमः) हमारा वारंवार नमस्कार है।

भावार्थ—जिस जगदीश्वर प्रभु ने यह समष्टि वायु को प्राणापान के समान बनाया। प्रकाश करने वाली किरणें जिसकी चक्षु की न्याई है अर्थात् उनसे ही रूप का ग्रहण होता है। उस परमात्मा ने ही सब व्यवहार को सिद्ध करने वाली दश दिशाओं को बनाया है। ऐसे अनन्त परमात्मा को हमारा वारंवार प्रणाम है ॥ ४० ॥

यः श्रमात् तपसो जातो लोकान्त्सर्वान्त्स-
मानशे। सोमं यश्चक्रे केवलं तस्मै ज्येष्ठाय
ब्रह्मणे नमः ॥४१॥ १०।७।३६॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (श्रमात्) अपने श्रम अर्थात् प्रयत्न से और (तपसः) अपने ज्ञान से (जातः) प्रसिद्ध होकर (सर्वान् लोकान्) सब लोकों में (समानशे) सम्यक् व्याप रहा है। (यः) जिसने (सोमम्) ऐश्वर्य को (केवलम्) अपना ही (चक्रे) बनाया (तस्मै ज्येष्ठाय) उस सब से श्रेष्ठ वा बड़े (ब्रह्मणे नमः) परमात्मा को हमारा नमस्कार है।

भावार्थ—परमात्मा परम पुरुषार्थी, परा-क्रमी और परमैश्वर्यवान् हुआ सब जगत् का

अधिष्ठाता है । कई लोग जो परमात्मा को निष्क्रिय अर्थात् कुछ कर्ता धर्ता नहीं है, ऐसा मानते हैं उनको इन मन्त्रों की तरफ़ ध्यान देना चाहिये, जो स्पष्ट कह रहे हैं कि परमात्मा वड़ा पुरुपार्थी, पराक्रमी, वड़ा वलवान् और परमैश्वर्यवान् होकर सव जगत् को वनाता है । परमात्मा अपने वल से ही अनन्त ब्रह्माण्डों को वनाते, पालते, पोपते और प्रलय काल में प्रलय भी कर देते हैं, ऐसे समर्थ प्रभु को वारंवार हमारा प्रणाम है॥४१॥

महद् यक्षं भुवनस्य मध्ये, तपसि क्रान्तं सलिलस्य पृष्ठे। तस्मिन् छ्रयन्ते य उ के च देवा,वृक्षस्य स्कन्धः परित इव शाखाः॥४२॥

१०।७।३८॥

शब्दार्थ—(महत्) बड़ा (यक्षम्) पूज-नीय ब्रह्म (भुवनस्य मध्ये) जगत् के बीच (तपसि) अपने सामर्थ्य में (क्रान्तम्) पराक्रमयुक्त होकर (सलिलस्य) अन्तरिक्ष के (पृष्ठे) पीठ पर वर्तमान है। (तस्मिन्) उस ब्रह्म में (य उ के च देवाः) जो कोई भी दिव्य लोक हैं वे (श्रयन्ते) ठहरते हैं। (इव) जैसे (वृक्षस्य शाखाः) वृक्ष की शाखाएँ (स्कन्धः परितः) धड़ और पीठ के चारों ओर होती हैं।

भावार्थ—अनन्त आकाश के बीच परमेश्वर महिमा में पृथिवी आदि अनन्त लोक की ठहरे हुए हैं। जैसे वृक्ष की शाखाएँ वृक्ष के धड़ में लगी होती हैं ऐसे ही उस परमेश्वर के आश्रय सब लोक लोकान्तर वर्तमान हैं ॥४२॥

भोग्यो भवदथो अन्नमदद् बहु ।
यो देवमुत्तरावन्तमुपासातै सनातनम् ॥४३॥
१०।८।२२॥

शब्दार्थ—(यः) जो ज्ञानी पुरुष (उत्तरावन्तम्) अत्युत्तम गुण वाले (सनातनम्) सदा एकरस (देवम्) स्तुति के योग्य परमेश्वर को (उपासातै) उपासना करता है वह (भोग्यः) भाग्यशील (भवत्) है (अथ) और (अन्नम्) जीवन के साधन अन्नादि पदार्थों को (अदत्) उपयोग में (बहु) बहुत प्राप्त करता है।

भावार्थ—जो महानुभाव, उस परम प्यारे सर्वगुणालंकृत सनातन परमात्मा की प्रेम से भक्ति करता है वही भाग्यवान् है, उसी को परमात्मा, अन्नादि भोग्य पदार्थ प्राप्त

कराता है वह महापुरुष अन्नादि पदार्थों को अतिथि आदि के सत्कार रूप परोपकार से लगाता हुआ और आप भी उन पदार्थों को भोगता हुआ सुखी होता है ॥४३॥

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः ॥
॥४४॥ १०।८।२३॥

शब्दार्थ—(एनम्) इस परमात्मा को (सनातनम्) विद्वान् पुरुष सनातन (आहुः) कहते हैं । (उत) और (अद्य) आज (पुनर्णवः) नित्य नया (स्यात्) होता जाता है । (अहोरात्रे) दिन और रात्री दोनों (अन्यो अन्यस्य) एक दूसरे के (रूपयोः) दो रूपों में से (प्रजायेते) उत्पन्न होते हैं ।

भावार्थ—उस परमप्यारे प्रभु के उपासक महानुभावों को नित्य नये से नये प्रभु के अनन्त गुण प्रतीत होते हैं, जैसे दिन से रात और रात से दिन नये से नये प्रतीत होते हैं ॥४४॥

यावंती द्यावांपृथिवी वरिम्णा यावदापंः सिष्यदुः। यावंदग्निः ततस्त्वमसि ज्यायांन् विश्वहा महाँस्तस्मैं ते काम नम इत् कृणोमि ॥४५॥ ९।२।२०॥

शब्दार्थ—(यावती) जितने कुछ (द्यावा-पृथिवी) सूर्य और भूलोक (वरिम्णा) अपने फैलाव से फैले हुए हैं। (यावत्) जहां तक (आपः) जल धाराएं (सिस्यदुः) बहती हैं और (यावत्) जितना कुछ (अग्निः)

अग्नि वा बिजली है (ततः) उस से (त्वम्) आप (ज्यायान्) अधिक बड़े (विश्वहा) सब प्रकार (महान्) बड़े पूजनीय (असि) हैं, (तस्मै ते) उस आपको (इत्) ही (काम) हे कामना करने योग्य परमेश्वर! (नमः कृणोमि) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—परमेश्वर सूर्य, पृथिवी आदि पदार्थों का उत्पन्न करने वाला और जानने वाला है। आकाशादि सबसे बड़ा है। उसी को हम प्रणाम करें और उसी की उपासना करें॥४५॥

ज्यायान् निमिषतोऽसि तिष्ठतो ज्याया-
न्त्समुद्रादसि काम मन्यो। ततस्त्वमसि
ज्यायान् विश्वहा महाँस्तस्मै ते काम नम
इत् कृणोमि ॥४६॥ ९।२।२३॥

शब्दार्थ—(काम) हे कामनायोग्य (मन्यो) पूजनीय प्रभो ! (निमिषतः) पलके मारने वाले मनुष्य पशु पक्षी आदि से और (तिष्ठतः) स्थावर वृक्ष पर्वतादि से (ज्यायान्) अधिक बड़े (असि) हैं और (समुद्रात्) आकाश व जलनिधि से (ज्यायान्) अधिक बड़े (असि) हैं। शेष ४५वें मन्त्र की नाईं।

भावार्थ—परमेश्वर ! आप चर अचर संसार से और आकाश और जलनिधि से बहुत बड़े हैं। ऐसे आपको ही मैं बार बार नमस्कार करता हूँ ॥४६॥

न वै वातश्चन कार्ममाप्नोति नाग्निः सूर्यो नोत चन्द्रमाः। ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महाँस्तस्मै ते काम नम इत् कृणोमि॥४७

शब्दार्थ—(न वै चन) न तो कोई (वातः) वायु (कामम्) कामनायोग्य परमेश्वर को (आप्नोति) प्राप्त होता है (न अग्निः) न ही अग्नि (सूर्यः) और सूर्य (उत) और (न चन्द्रमा) न ही चन्द्रमा प्राप्त हो सकते हैं। (ततः) उन सब से आप बड़े और पूजनीय हो। उस आपको ही मैं बार २ प्रणाम करता हूँ।

भावार्थ—उस महान् सर्वव्यापक परमात्मा को वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि नहीं पहुँच सकते। इन सब को अपने शासन में चलाने वाला वह प्रभु ही बड़ा है। उस आपको ही हम बार बार प्रणाम करते हैं॥४७॥

सूयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं

भगवन्तः स्याम । अद्धि तृणमघ्न्ये विश्व-दानीं पिब शुद्धमुदकमाचरन्ती ॥४८॥

९।१०।२०॥

शब्दार्थ—(सूयवसात्) सुन्दर अन्न भोगने वाली प्रजा (भगवती) बहुत ऐश्वर्य वाली (हि) ही (भूयाः) होवो। (अध) फिर (वयम्) हम लोग (भगवन्तः स्याम) ऐश्वर्य वाले होवें। (अघ्न्ये) हे हिंसा न करने वाली प्रजा (विश्वदानीं) समस्त दानों की क्रिया का (आचरन्ती) आचरण करती हुई तू हिंसा न करने वाली गौ के समान (तृणम्) घास व अल्प मूल्य वाले पदार्थ को (अद्धि) खाओ (शुद्धम् उदकं पिब) शुद्ध जल पान कर।

भावार्थ—परमात्मा वेद द्वारा हमें उपदेश देते हैं, हे मेरी प्रजाओ! जैसे गौ साधारण घास खाकर और शुद्ध जल पीकर दुग्ध घृतादिकों को देकर उपकार करती है ऐसे तुम भी थोड़े खर्च से आहार व्यवहार करते हुए संसार का उपकार करो। आपका सादा जीवन हो ॥४८॥

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम्। पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥४९॥ ११।४।५॥

शब्दार्थ—(यदा) जब (प्राणः) जीवन-दाता परमेश्वर ने (वर्षेण) वर्षा द्वारा (महीम्) बड़ी (पृथिवीम्) पृथिवी को (अभ्यवर्षीत्) सींच दिया (तत्) तब

(पशवः) 'पश्यन्तीति पशवः' आंखों से देखने वाले जीवमात्र (प्रमोदन्ते) बड़ा हर्ष मनाते हैं। (नः) हमारी (महः) बढ़ती (वै) अवश्य (भविष्यति) होगी।

भावार्थ—प्राणीमात्र को जीवनदाता परमेश्वर जब वर्षा द्वारा पृथिवी को पानी से तर कर देते हैं तब मनुष्यादि प्राणी बड़े हर्ष को प्राप्त होते हैं कि इस वर्षा से अनेक प्रकार के सुन्दर अन्न फल व फूल उत्पन्न होकर हमें लाभदायक होंगे ॥४९॥

नम॑स्ते अस्त्वाय॒ते नमो॑ अस्तु परा॒यते।
नम॑स्ते प्राण॒ तिष्ठ॑त॒ आसी॑नायो॒त ते॒ नमः॑ ॥

॥५०॥ ११।४।७॥

शब्दार्थ—हे (प्राण) जीवनदाता परमे-

श्वर ! (आयते) आते हुए पुरुष के हित के लिये (ते नमः) आपको नमस्कार (अस्तु) हो। (परायते) बाहिर जाते हुए पुरुष के लिये (ते नमः) आपको नमस्कार हो। (तिष्ठते) खड़े हुए पुरुष के हित के लिये (नमः) आपको नमस्कार हो। (उत) और (आसीनाय) बैठे हुए पुरुष के हित के लिये (ते नमः) आपको नमस्कार हो।

भावार्थ—मनुष्यमात्र को चाहिये कि अपने किसी बन्धुवर्ग व मित्र के आने जाने में परमात्मा से प्रार्थना करे और अपने लिये भी उस परमात्मा से हर एक चेष्टा में प्रार्थना करे जिससे अपने मित्रों के और अपने अपने काम निर्विघ्नतया सम्पूर्ण हों ॥ ५० ॥

यो अस्य सर्वजन्मन ईशे सर्वस्य चेष्टतः। अतन्द्रो ब्रह्मणा धीरः प्राणो माऽनुतिष्ठतु ॥५१॥ ११।४।२४॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (अस्य) इस (सर्वजन्मनः) अनेक जन्म और (सर्वस्य चेष्टतः) सब चेष्टा करने वाले कार्य जगत् का (ईशे) ईश्वर है, वह परमेश्वर (अतन्द्रः) आलस्य रहित (धीरः) बुद्धिमान् (प्राणः) जीवनदाता (ब्रह्मणा) वेद ज्ञान द्वारा (मा अनु) मेरे साथ २ (तिष्ठतु) ठहरा रहे।

भावार्थ—परमेश्वर सर्वशक्तिमान्, सर्व-नियन्ता, सर्वज्ञ, जीवनदाता, जगदीश से हमारी प्रार्थना है कि भगवन् हमें वैदिक ज्ञान में प्रवीण करते हुए आप हमें सदा

सुखी करें और सदा शुभ कामों में प्रेरणा करते रहें ॥ ५१ ॥

ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार ननु तिर्यङ् निपद्यते ।
न सुप्तमस्य सुप्तेष्वनु शुश्राव कश्चन ॥५२॥

११।४।२५॥

शब्दार्थ—(सुप्तेषु) सोते हुए प्राणियों पर वह प्राण नामक परमात्मा (ऊर्ध्वः) ऊपर रह कर (जागार) जागता है । (न नु) कभी नहीं (तिर्यक्) तिरछा (निपद्यते) गिरता। (सुप्तेषु) सोते हुओं में (अस्य सुप्तम्) इस परमात्मा का सोना (कश्चन) किसी ने भी (न अनुशुश्राव) परम्परा से नहीं सुना ।

भावार्थ—सब प्राणी निद्रा आने पर सो जाते हैं परन्तु जीवनदाता परमेश्वर कभी

सोते नहीं। कभी टेढ़े गिरते भी नहीं। कभी किसी मनुष्य ने इस परमात्मा को सोते हुए सुना भी नहीं ॥ ५२ ॥

स धाता स विधर्ता स वायुर्नभ उच्छ्रितम्।
सोऽर्यमा स वरुणः स रुद्रः स महादेवः
सो अग्निः स उ सूर्यः स उ एव महायमः॥
॥५३॥ १३।४।३,४,५॥

शब्दार्थ—(सः) वह परमेश्वर (धाता) पोषण करने वाला और (स विधाता) वही परमेश्वर विविध प्रकार से धारण करने वाला है। (स वायुः) वह परमात्मा महाबली है। (उच्छ्रितम्) और ऊँचा वर्तमान (नभ.) प्रबन्धकर्त्ता व नायक परमात्मा है (सः) वह परमेश्वर (अर्यमा) सब से श्रेष्ठ और

श्रेष्ठों का मान्य करता है। (स वरुणः) श्रेष्ठ (स रुद्रः) वह भगवान् ज्ञानवान् है। (स महादेवः) वह महादानी है। (सः) वह परमात्मा (अग्निः) व्यापक (स उ सूर्यः) वही प्रेरक है। (स उ) वही (एव) निश्चय करके (यहायमः) बड़ा न्यायकारी है।

भावार्थ—इस परमेश्वर के अनन्त नाम जैसे ऋग्वेदादि में हैं वैसे इस अथर्व में भी अनेक नाम हैं। जैसे कि धाता, विधाता, नभः, अर्यमा, वरुण, महादेव, अग्नि, सूर्य, महायम इत्यादि ॥ ५३ ॥

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥
नाऽष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥५४॥

१३।४।१६, १७, १८॥

शब्दार्थ—(न द्वितीयः) न दूसरा (न तृतीयः) न तीसरा (न चतुर्थः) न चौथा (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है । (न पञ्चमः) न पांचवाँ (न षष्ठः) न छटा (न सप्तमः) न सातवां (अपि) ही (उच्यते) कहा जाता है । (न अष्टमः) न आठवां (न नवमः) न नवां (न दशमः) न दसवां (अपि) ही कहा जाता है ।

भावार्थ—परमात्मा एक है । उससे भिन्न कोई भी दूसरा तीसरा चौथा आदि नहीं है । उस एक की ही उपासना करनी चाहिए। वही परमात्मा सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक, एक रस है । उसकी उपासना करने से ही मुक्ति धाम को पुरुष प्राप्त हो सकता है ॥५४॥

स सर्वस्मै विपश्यति यच्च प्राणति यच्चन। तमिदं निगतं सहः स एष एक एकवृदेक एव। सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति॥

॥५५॥ १३।४।१९,२०,२१॥

शब्दार्थ—(सः) वह परमेश्वर (सर्वस्मै) सब संसार को (विपश्यति) विविध प्रकार से देखता है। (यत् प्राणति) जो श्वास लेता है (यत् च न) और जो सांस नहीं लेता है। (तम् इदम्) उस परमात्मा को यह सब (सहः) सामर्थ्य (निगतम्) निश्चय करके प्राप्त है। (स एष) वह आप (एकः) एक (एक वृत्) अकेला वर्तमान (एक एव) एक ही है। (अस्मिन्) इस परमेश्वर में (सर्वे देवाः) पृथिवी आदि सब

लोक (एक वृतः भवन्ति) एक परमात्मा में वर्तमान रहते हैं।

भावार्थ—परमात्मा प्राणी अप्राणी सबको देख रहे हैं वह परमेश्वर अपनी सामर्थ्य से सब लोकों के आधार होकर सदा एकरस, एकरूप वर्तमान है। वेद ने कैसे स्पष्ट शब्दों में बार बार एक परमेश्वर का निरूपण किया है ॥५५॥

कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहितः। गोजिद् भूयासमश्वजिद् धनंजयो हिरण्यजित् ॥५६॥ ७।५०।८॥

शब्दार्थ—(मे) मेरे (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में (कृतम्) कर्म है। (मे सव्ये) मेरे बाएँ हाथ में (जयः) जीत

(आहितः) स्थित है। मैं (गोजिद्) भूमि को जीतने वाला (अश्वजित्) घोड़े जीतने वाला (धनं जयः) धन को जीतने वाला और (हिरण्यजित्) सुवर्ण जीतने वाला (भूयासम्) होऊँ ॥५६॥

भावार्थ—हे परमेश्वर! मेरे दाहिने हाथ में कर्म या उद्यम दे। बाएँ हाथ में विजय दे। आपकी कृपा से मैं भूमि के जीतनेवाला और घोड़े, धन तथा सुवर्ण जीतने वाला होऊँ। परमात्मन्! अगर मैं अपकी कृपा से उद्यमी बन जाऊँ, तब पृथिवी, अश्व, गौ इत्यादि पशु सुवर्ण, धन आदि की प्राप्ति कोई कठिन नहीं। इसलिये आप मुझे उद्यमी बनाएँ। धनी होकर आप सुखी और संसार को भी लाभ पहुँचाऊँ ॥५६॥

सूर्यो द्यां सूर्यः पृथिवीं सूर्य आपोऽति पश्यति । सूर्यो भूतस्यैकं चक्षुरा रुरोह दिवं महीम् ॥५७॥ १३।१।४५॥

शब्दार्थ—(सूर्यः) सब का चलाने वाला परमात्मा (द्याम्) प्रकाशमान् इस सूर्य को (सूर्यः) वह सर्व प्रेरक (पृथिवीम्) पृथिवी को (सूर्यः) वह सर्व नियामक (आपः) प्रत्येक काम को (अतिपश्यति) देख रहा है । (सूर्यः) वह सर्व नियन्ता (भूतस्य) संसार का (एकम्) एक (चक्षुः) नेत्ररूप जगदीश्वर (दिवम्) आकाश पर और (महीम्) पृथिवी पर (आरुरोह) ऊंचा स्थित है ।

भावार्थ—वह समदर्शी परमेश्वर सूर्य, पृथिवी, जल और प्राणीमात्र संसार को

देखता हुआ सबको अपने नियम में चला रहा है। ऊँचा होने का अभिप्राय उच्च और उदार भावों में अधिक होने से है ॥५७॥

बण्महाँ असि सूर्य बडादित्य महाँ असि । महस्ते सतो महिमा पनस्यतेद्धा देव महाँ असि ॥५८॥ २०।५८।३॥

शब्दार्थ—(सूर्य) हे चराचर के प्रेरक परमात्मन् ! आप (बट्) सत्य (महान्) बड़े (असि) हैं। (आदित्य) हे अविनाशी ! परमात्मन् आप (बट्) ठीक २ (महान्) पूजनीय (असि) हैं। (महता ते) आप बड़े की (महिमा) प्रभाव (महान्) बड़ा है। (आदित्य) हे प्रकाशस्वरूप भगवन् ! (त्वम् महान् असि) आप बड़ों से भी बड़े हो।

भावार्थ—परमेश्वर को वड़े से वड़ा सव महानुभाव ऋषियों ने और सव वड़े वड़े राजा महाराजाओं ने माना है। उस महाप्रभु की उपासना करके हम सव को अपने उद्यम से वढ़ना चाहिये ॥५८॥

सूर्यायै देवेभ्यो मित्राय वरुणाय च। ये भूतस्य प्रचेतसस्तेभ्य इदमकरं नमः ॥५९॥
१४।२।४६॥

शब्दार्थ—(सूर्यायै) सूरि अर्थात् विद्वानों के सदा हित करने वाली ब्रह्मविद्या की प्राप्ति के लिये (देवेभ्यः) उत्तम गुणों की प्राप्ति के लिये (च) और (वरुणाय मित्राय) श्रेष्ठ मित्र की प्राप्ति के लिये (ये) जो पुरुष (भूतस्य) उचित कर्म के (प्रचेतसः) जानने

वाले हैं (तेभ्यः) उनके लिये (इदं नमः अकरम्) यह मैं नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुष सब का हित करने वाली विद्या को प्राप्त करते हैं वे संसार में प्रशंसनीय और सुखी होते हैं ॥५९॥

यो अस्य विश्वजन्मन ईशे विश्वस्य चेष्टतः।
अन्येषु क्षिप्रधन्वने तस्मै प्राण नमोऽस्तु ते॥
॥६०॥ ११।४।२३॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (अस्य) इस (विश्वजन्मनः) विविध जन्म वाले और (विश्वस्य चेष्टतः) सब चेष्टा करने वाले जगत् का (ईशे) ईश्वर है। इन से (अन्येषु) भिन्न कारणरूप परमाणुओं पर (क्षिप्रधन्वने) व्यापक होने वाले (तस्मै) उस (ते)

आपको (प्राण) जीवनदाता परमेश्वर (नमो अस्तु) नमस्कार हो ।

भावार्थ—जो परमात्मा सब कार्यरूप जगत् और कारण रूप जगत् का स्वामी है उस परमेश्वर को हमारा नमस्कार है ॥६०॥

प्रियं मा कृणु देवेषु प्रियं राजसु मा कृणु ।
प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये ॥६१॥
१९।६२।१॥

शब्दार्थ—हे परमात्मा ! (मा) मुझे (देवेषु) ब्रह्मज्ञानी विद्वानों में (प्रियम्) प्रिय (कृणु) कर (मा) मुझे (राजसु) राजाओं में (प्रियम्) प्यारा (कृणु) कर (उत) और (अर्ये) वैश्य में (उत) और (शूद्रे) शूद्र में और (सर्वस्य पश्यतः) सब देखने वाले जीव का (प्रियम्) प्यारा बना ।

भावार्थ––जैसे परमेश्वर सब ब्राह्मणादिकों में निष्पक्ष होकर प्रीति करते हैं और उन्होंने ही वेदवाणी मनुष्यमात्र के लिये रची है, ऐसे ही सब विद्वानों को चाहिये कि आप वेदवाणी का अभ्यास करके निष्पक्ष होकर मनुष्य मात्र को वेदवाणी का अभ्यास करावें और सब से प्रेम करते हुए सब को धार्मिक पवित्रात्मा बनाकर सब का कल्याण करें ॥ ६१ ॥

गा॒वः॑ सन्तु प्र॒जाः स॒न्त्वथो॑ अस्तु तनू॒बलम् । तत् सर्व॒मनु॑ मन्यन्तां दे॒वा ऋ॒षभ॒दायिने॑ ॥६२॥ ९।४।२०॥

शब्दार्थ—(ऋषभदायिने) सर्वदर्शक परमात्मा के ज्ञान के देने वाले के लिये (गावः सन्तु) विद्याएँ होवें (प्रजाः सन्तु) पुत्र,

पौत्रादि प्रजाएँ होवें । (अथो) और भी (तनू बलम्) शरीर बल (अस्तु) होवे । (देवाः) विद्वान् लोग (तत्सर्वम्) वह सब वस्तुएँ (अनुमन्यन्ताम्) स्वीकार करें ।

भावार्थ—जो ब्रह्मचारी महात्मा लोग परमात्मा का वेद द्वारा उपदेश करते हैं उनके स्थानों में वेद विद्याओं का प्रचार और पुत्र पौत्र तथा शिष्यादि वर्ग और उन उपदेशक महानुभावों का शारीरिक बल भी अवश्य होना चाहिये । संसार के बुद्धिमान् विद्वानों का कर्तव्य है कि ऐसे वेद द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश करने वाले महानुभाव के लिये सब उत्तम २ पदार्थ प्राप्त करावें । जिससे किसी बात की न्यूनता न होकर वेदों का तथा ईश्वर भक्ति का प्रचार सदा होता रहे ॥६२॥

यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते। यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ॥६३॥ १०।७।२४॥

शब्दार्थ—(यत्र) जहां पर (ब्रह्मविदः देवाः) ब्रह्मज्ञानी देव (ज्येष्ठम् ब्रह्म) सबसे बड़े और श्रेष्ठ ब्रह्म को (उपासते) भजते हैं। वहां (यो वै) जो ही (तान् प्रत्यक्षम्) उन ब्रह्मज्ञानिओं को प्रत्यक्ष करके (विद्यात्) जान लेवें। (सः) वह (ब्रह्मा) महापण्डित (वेदिता) ज्ञाता (स्यात्) होवे।

भावार्थ—जो विद्वान् पुरुष ब्रह्मज्ञानिओं से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं वे ही संसार में तत्वदर्शी महापण्डित विद्वान् होते हैं। विना गुरु परम्परा के कोई वेद व परमात्मा के जानने वाला नहीं हो सकता ॥६६॥

गर्भो अस्योषधीनां गर्भो हिमवतामुत ।
गर्भो विश्वस्य भूतस्येमं मे अगदं कृधि ॥६४॥
६।९५।३॥

शब्दार्थ—हे परमेश्वर ! आप (ओषधीनाम्) ताप रखने वाले सूर्यादि लोकों का (गर्भः) स्तुति योग्य (उत) और (हिमवताम्) शीत स्पर्श वाले जल मेघादि का (गर्भः) ग्रहण करने वाले (विश्वस्य भूतस्य) सब प्राणिसमूह का (गर्भः) आधार (असि) हैं। (मे) मेरे लिये (इमम्) इस संसार को (अगदम्) नीरोग (कृधि) कर दो ।

भावार्थ—जो मनुष्य परमेश्वर के उत्पन्न पदार्थों का गुण जान कर प्रयोग करते हैं वह संसार में सुख भोगते हैं। इसलिये हम

सब को चाहिये कि सूर्यादि उष्ण और जल मेघ आदि शीत पदार्थों के आश्रय परमात्मा की भक्ति करते और ईश्वर रचित पदार्थों से अपना काम लेते हुए सुख को भोगें ॥६४॥

शास इत्था महाँ अस्यमित्रसाहो अस्तृतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥६५॥ १।२०।४॥

शब्दार्थ—हे परमात्मन् ! आप(इत्था)सत्य २ (महान्) बड़े (शासः) शासक (अमित्र साहः) शत्रुओं को दबा देने वाले (अस्तृतः) कभी न हारने वाले (असि) हैं। (यस्य सखा) जिस आपका सखा (कदाचन) कभी भी (न हन्यते) नहीं मारा जाता और (जीयते) हारता नहीं।

भावार्थ—हे परमात्मन् ! आप ही सच्चे शासक, शत्रुओं को हराने वाले, कभी नहीं हारने वाले हो। आपके साथ सच्चा प्रेम करने से जो आपका मित्र बन गया है वह न कभी किसी से मारा जाता है और न किसी से दबाया जा सकता है ॥ ६५ ॥

य एक इद् विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ॥६६॥२०।६३।४॥

शब्दार्थ—(यः एकः इत्) जो अकेला ही परमेश्वर (दाशुषे) दाता (मर्ताय) मनुष्य के लिये (वसु) धन (विदयते) बहुत प्रकार से देता है। (अङ्ग) हे मित्र ! वह (ईशानः) समर्थ (अप्रतिष्कुतः) बेरोक गति वाला (इन्द्रः) सब से बढ़कर ऐश्वर्य वाला है।

भावार्थ—सारी विभूति के स्वामी इन्द्र परमेश्वर दानशील धर्मात्मा पुरुष को बहुत प्रकार का धन देते हैं। वह अन्तर्यामी प्रभु उस दाता पुरुष को जानते हैं कि यह पुरुष दान द्वारा अनेकों को लाभ पहुंचायेगा इस लिये इसको बहुत ही धन देना ठीक है। प्यारे मित्रो! ऐसे समर्थ प्रभु की प्रार्थना उपासना करने से हमारा दरिद्र दूर होकर इस लोक में तथा परलोक में हम सुखी हो सकते हैं॥ ६६॥

आ पश्यति प्रति पश्यति परा पश्यति पश्यति। दिवमन्तरिक्षमाद् भूमिं सर्वं तद् देवि पश्यति॥६७॥ ४।२०।१॥

शब्दार्थ—(देवि) हे दिव्यशक्ति वाले

परमेश्वर ! आप (तत्) विस्तार करने वाले वा सब जगह में पूर्ण ब्रह्म हो (आ पश्यति) सब के सम्मुख देख रहे हो। (प्रतिपश्यति) पीछे से देखते हो (परापश्यति) दूर से देख लेते हो (पश्यति) समान से देखते हो। (दिवम्) सूर्यलोक (अन्तरिक्षम्) मध्यलोक (आत्) और भी (भूमिम्) भूमि और (सर्वम् पश्यति) सब को देखते हो।

भावार्थ—दिव्यशक्ति वाले, सर्वत्र व्यापक, सर्वज्ञ, सर्वान्तर्यामी, परमात्मा अपने सम्मुख पीछे से दूर से और समान रूप से देख रहे हैं। सूर्यलोक, अन्तरिक्ष लोक और भूमि तथा सब पदार्थ मात्र को प्रत्यक्ष देख रहे हैं। ऐसे दिव्यशक्ति वाले, सर्वज्ञ, सर्व-व्यापक, अन्तर्यामी परमात्मा को सदा

समीप द्रष्टा जानते हुए सब पापों से बचकर सदा उसकी उपासना करनी चाहिये ॥६७॥

ये ते पन्थानोव दिवो येभिर्विश्वमैरयः ।
तेभिः सुम्नया धेहि नो वसो ॥६८॥

७।९५।१॥

शब्दार्थ—(वसो) हे श्रेष्ठ परमेश्वर ! (ये) जो (ते) आपके (दिवः पन्थानः) प्रकाश के मार्ग (अव) निश्चय करके हैं (येभिः) जिनके द्वारा (विश्वम्) संसार को (ऐरयः) आपने चलाया है। (तेभिः) उन से ही (सुम्नया) सुख के साथ (नः) हमें (आधेहि) सब ओर से पुष्ट करो।

भावार्थ—जिज्ञासु पुरुषों को चाहिये कि परमात्मा के बताये वेदमार्ग पर चल कर

अपनी और अपने देशवासियों की शारीरिक सामाजिक और आत्मिक उन्नति करें ॥ ६८ ॥

पूषेमा आशा अनु वेद सर्वाः सो अस्माँ अभयतमेन नेषत् । स्वस्तिदा आघृणिः सर्ववीरो प्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् ॥६९॥
७।९।२॥

शब्दार्थ—(पूषा) पोषण कर्ता परमेश्वर (इमा सर्वाः आशा) इन सब दिशाओं को (अनुवेद) निरन्तर जानता है। (सः) वह (अस्मान्) हमें (अभयतमेन) अत्यन्त निर्भय मार्ग से (नेषत) ले चले। (स्वस्तिदाः) मंगलदाता (आघृणिः) बड़ा प्रकाशमान् (सर्ववीरः) सब में वीर (प्रजानन्) अति

विद्वान् (अप्रयुच्छन्) विना चूक किए हुए (पुरः एतु) हमारे आगे २ चले।

भावार्थ—सर्वव्यापक, मंगलप्रद, सर्ववीर, बड़े विद्वान्, परमेश्वर को सदा सहायक जानकर मनुष्य उत्तम कर्मों में आगे बढ़े। उस प्रभु को सहायक जानता हुआ उसकी भक्ति में सदा लगा रहे ॥६९॥

बृहस्पतिर्नः परि पातु पश्चादुतोत्तरस्मादधरादघायोः। इन्द्रः पुरस्तादुत मध्यतो नः सखा सखिभ्यो वरीयः कृणोतु ॥७०॥

७।९१।१॥

शब्दार्थ—(बृहस्पतिः) सब का बड़ा स्वामी परमेश्वर (नः) हमें (पश्चात्) पीछे (उत्तरस्मात्) ऊपर (उत) और

(अधरात्) नीचे से (अघायोः) पापेच्छु दुराचारी शत्रु से (परिपातु) सब प्रकार बचावे। (इन्द्रः) परमेश्वर (पुरस्तात्) आगे से (उत मध्यतः) और मध्य से (नः) हमारे लिये (वरीयः) विस्तीर्ण स्थान (कृणोतु) करे (सखा सखिभ्यः) जैसे मित्र मित्र के लिये करता है।

भावार्थ—परमात्मा हम को आगे, पीछे, ऊपर, नीचे से सब शत्रुओं से हमारी रक्षा करे। वह परमेश्वर हमारे लिये आगे से और मध्य से विस्तीर्ण स्थान निर्माण करे। जैसे एक मित्र अपने मित्रों के लिये स्थान बनाता है ॥७०॥

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु स्वस्ति

गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः। विश्वं सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु ज्योगेव दृशेम सूर्यम् ॥
॥७१॥ १।३१।४॥

शब्दार्थ—(नः) हमारी (मात्रे) माता के लिये (उत पित्रे) और पिता के लिय (स्वस्ति अस्तु) कल्याण होवे। (गोभ्यः) गौओं के लिये (पुरुषेभ्यः) पुरुषों के लिये और (जगते) जगत् के लिये (स्वस्ति) कल्याण होवे। (विश्वम्) सम्पूर्ण (सुभूतम्) उत्तमैश्वर्य और (सुविदत्रम्) उत्तम ज्ञान और कुल (नः अस्तु) हमारे लिये हो। (ज्योक्) वहुत काल तक (सूर्यम् एव दृशेम) हम सूर्य को देखते रहें।

भावार्थ—जो श्रेष्ठ पुरुष अपनी माता पिता

आदि कुटुम्बिओं और अन्य माननीय पुरुषों का सत्कार करते और गो आदि पशुओं से लेकर सब जीवों तथा संसार के साथ उपकार करते हैं वे पुरुषार्थी उत्तम धन, उत्तम ज्ञान और उत्तमकुल पाने और सूर्य के समान होकर बड़ी आयु को प्राप्त होते हैं ॥७१॥

इदं जनासो विदथं महद्ब्रह्म वदिष्यति ।
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ॥७२॥ १।३२।१॥

शब्दार्थ—(जनासः) हे मनुष्यो ! (इदम् विदथ) इस बात को तुम जानते हो कि ब्रह्म-वेत्ता पुरुष (महद् ब्रह्म वदिष्यति) पूजनीय परब्रह्म का उपदेश करेगा (तत्) वह ब्रह्म

(न पृथिव्याम्) न तो पृथिवी में है और (न दिवि) न सूर्यलोक में है। (येन) जिसके सहारे से (वीरुधः) यह जड़ी बूटियां सृष्टि के पदार्थ (प्राणन्ति) श्वास लेते हैं।

भावार्थ—सर्वव्यापक ब्रह्म भूमी और सूर्यादि किसी विशेष स्थान में वर्तमान नहीं है तो भी वह अपनी सत्ता मात्र से ओषधी अन्नादि सब सृष्टि का नियम पूर्वक प्राणदाता है। ब्रह्मज्ञानी लोग ऐसे ब्रह्म का उपदेश करते हैं ॥८२॥

अनड्वान् दाधार पृथिवीमुत द्यामनड्वान् दाधारोर्वन्तरिक्षम्। अनड्वान् दाधार प्रदिशः षडुर्वीरनड्वान् विश्वं भुवनमाविवेश ॥७३॥ ४।११।१॥

शब्दार्थ— (अनड्वान्) प्राण, जीविका पहुँचानेवाले परमेश्वर ने (पृथिवीम् उत द्याम्) पृथिवी और सूर्य को (दाधार) धारण किया है। (अनड्वान्) उसी परमात्मा ने (उरु अन्तरिक्षम्) विस्तृत मध्यलोक को (दाधार) धारण किया है (अनड्वान्) उसी परमेश्वर ने (षट्) पूर्वादि नीचे ऊपर की छ दिशायें (उर्वीं) बड़ी चौड़ी (प्रदिशः) महा दिशाओं को (दाधार) धारण किया है (अनड्वान् विश्वम् भुवनम्) परमात्मा सब जगत् में (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है।

भावार्थ—सब प्राणीमात्र को जीवन के साधन देकर और पृथिवी, द्युलोक और अन्तरिक्ष लोक को रचकर पूर्वादि सब दिशाओं में और सारे जगत् में प्रवेश कर रहा है ॥७३॥

अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्व-
देवैः । अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमि-
न्द्राग्नी अहमश्विनोभा ॥७४॥ ४।२०।१॥

शब्दार्थ—(अहम्) मैं परमेश्वर (रुद्रेभिः) ज्ञानदाता व दुःख नाशकों (वसुभिः) निवास करानेवाले पुरुषों के साथ (उत) और (अहम्) मैं ही (विश्वदेवैः) सब दिव्यगुण वाले (आदित्यैः) सूर्यादि लोकों के साथ (चरामि) चलता हूं, अर्थात् वर्तमान हूँ। (अहम्) मैं (उभा) दोनों (मित्रावरुणो) दिन रात को (अहम्) मैं (इन्द्र अग्नि) पवन और अग्नि को (अहम्) में ही (उभौ अश्विनौ) दोनों सूर्य, पृथिवी को (बिभर्मि) धारण करता हूँ।

भावार्थ—परमात्मा कृपासिन्धु हम पर कृपा करते हुए उपदेश करते हैं कि मैं दुःख दूर करने वालों और दूसरों को ज्ञान देकर लाभ पहुँचाने वालों के साथ रहता हूँ और मैं ही दिव्यगुण युक्त सूर्यादि लोकलोकान्तरों के साथ और दिन, रात्रि में पवन और अग्नि, सूर्य, और पृथिवी को धारण कर रहा हूँ। ऐसे परमात्मा की उपासना करनी चाहिये ॥७४॥

मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणति य ईं शृणोत्युक्तम्। अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति श्रुधि श्रुत श्रद्धेयं ते वदामि ॥७५॥

शब्दार्थ—(मया) मेरे द्वारा ही (सः अन्नम् अत्ति) वह अन्न को खाता है (यः विपश्यति) जो कोई विशेष कर देखता है

(यः प्राणति) जो सांस लेता है और (यः) जो (ईम्) यह (उक्तम्) वचन को सुनता है । (माम्) मुझे (अमन्तवः) न मानने वाले न जाननेवाले (ते) वे पुरुष (उपक्षियन्ति) हीन होकर नष्ट होजाते हैं (श्रुत) हे सुनने में समर्थ जीव तू (श्रुधि) सुन (ते) तुझ से (श्रद्धेयम्) आदर के योग्य वचन को (वदामि) कहता हूं ।

भावार्थ—कृपालु भगवान् हमें उपदेश देते हैं कि संसार के सब प्राणी मेरी कृपा से ही, जो देखते, प्राण लेते और सुनते हैं अन्नादि खाते हैं । जो नास्तिक सब के पोषक मुझ को नहीं मानते वे सब सुखसाधनों से हीन होकर नष्ट होजाते हैं । मैं यह सत्य वचन आपको कहता हूँ ॥७५॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ। अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश ॥७६॥ ४।३०।५॥

शब्दार्थ—(अहम्) मैं (रुद्राय) ज्ञान दाता व दुःख के नाशक पुरुष के हित के लिए और (ब्रह्मद्विषे) ब्रह्मज्ञानी, वेदपाठी विद्वानों के द्वेषी (शरवे) हिंसक के (हन्तवे) मारने को (उ) ही (धनुः) धनुष (आतनोमि) तानता हूँ (अहम्) मैं भक्त जन के लिये (समदम् कृणोमि) आनन्द सहित इस जगत् को करता हूँ। (अहम् द्यावा पृथिवी) मैंने सूर्य और पृथिवी लोक में (आविवेश) सब ओर से प्रवेश किया।

भावार्थ—परमेश्वर उत्तमज्ञानी पुरुषों की रक्षा के लिए, श्रेष्ठों को दुःखदायक पुरुषों के नाश के लिए, सदा उद्यत रहता है और अपने भक्तों को सदा सब स्थानों में आनन्द देता है ॥७६॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा । भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥७७॥ ११।२।१६॥

शब्दार्थ—(सायम् नमः) सायंकाल में उस प्रभु को नमस्कार है (प्रातः नमः) प्रातः काल में नमस्कार है (रात्र्या नमो-दिवा नमः) दिन और रात्रि में बार २ नमस्कार है (भवाय) सुख करने वाले (च) और (शर्वाय) दुःख के नाश करने

वाले (उभाभ्याम्) दोनों हाथ जोड़ कर (नमः अकरम्) नमस्कार करता हूँ।

भावार्थ—पुरुष सब कामों के आरम्भ और अन्त में उस परमात्मा जगत्पति का ध्यान धरते हुए दोनों हाथ जोड़ कर और शिर को झुका कर सदा प्रणाम करे। जिससे अपना जन्म सफल हो। क्योंकि प्रभु की भक्ति से विमुख होकर विषयों में सदा फंसे रहने से अपना जन्म निष्फल ही है ॥७७॥

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आ पप्र उर्व१न्तरिक्षम्। तस्मै नमो यतमस्यां दिशी३तः ॥७८॥ ११।२।२७॥

शब्दार्थ—(भवः) सुख उत्पन्न करने वाला परमेश्वर (दिवः) सूर्य का (भुवः)

वही परमेश्वर (पृथिव्याः) पृथिवी का (ईशे) राजा हो । (भवः) उसी परमेश्वर ने उस (अन्तरिक्षम्) विस्तृत प्रकाश को (आपप्रे) सब ओर से पूर्ण कर रक्खा है । (इतः) यहां से (यतमस्यां दिशि) चाहे जौन सी दिशा हो उसमें (तस्मै नमः) उस जगदीश्वर को हमारा नमस्कार है।

भावार्थ—जो परमेश्वर सूर्य, पृथिवी, अन्तरिक्षादि लोकों का स्वामी हो कर उन पर शासन कर रहा है उस सर्व दिशाओं में परिपूर्ण सुखप्रद परमेश्वर को हमारा वार २ प्रणाम हो ॥७८॥

यस्याश्वा॑सः प्रदिशि यस्य गावो यस्य

ग्रामा यस्य विश्वे रथासः । यः सूर्यं य उपसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः ॥७९॥ २०।३४।७॥

शब्दार्थ—(यस्य) जिसकी (प्रदिशि) आज्ञा वा कृपा में (अश्वासः) घोड़े (यस्य) जिसकी आज्ञा व कृपा में (गावः) गाय, बैल आदि पशु (यस्य ग्रामा) जिसकी आज्ञा में ग्राम और (यस्य विश्वे रथासः) जिसकी आज्ञा में सब विहार कराने हारे पदार्थ हैं (यः सूर्यम्) जो भगवान् सूर्य को (यः उपसम्) और प्रभात वेला को (जजान) उत्पन्न करता है (यः अपाम् नेता) जो प्रभु जलों का सर्वत्र पहुँचाने वाला है (जनासः) हे मनुष्यो! (स इन्द्रः) वह बड़े ऐश्वर्य वाला इन्द्र है।

भावार्थ—जिस परमात्मा ने घोड़े, गौएँ, रथ ग्राम उत्पन्न किये और अपने प्रेमी पुत्रों को ये सब चीजें प्रदान कीं और जो प्रभु सूर्य और प्रभात वेला को बनाने वाला और जलों को जहां कहीं भी पहुँचाने वाला है। हे मनुष्यो ! वह परमात्मा इन्द्र है ॥७९॥

शक्रं वाचाभिष्टुहि धामन्धामन् विराजति।
विमदन् बर्हिरासदन् ॥८०॥ २०।४९।३॥

शब्दार्थ—(शक्रम्) शक्तिमान परमेश्वर की (वाचा अभिष्टुहि) वाणी से सब ओर स्तुति कर (धामन् धामन्) सब स्थानों में (विराजति) विराजमान है (विमदन्) विशेष रीति से आनन्द करता हुआ (बर्हिः आसदत्) पवित्र हृदय रूपी आसन पर ही विराजमान है।

भावार्थ—विवेकी पुरुषों को चाहिये कि परमात्मा को घट २ व्यापक जानकर वेद के पवित्र मन्त्रों से सदा स्तुति किया करें। वह परमात्मा ही इस लोक और परलोक में सुख देने वाला है ॥ ८० ॥

तम्वभि प्रगायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तं त्रिषमा विवासत ॥८१॥

२०।६१।४॥

शब्दार्थ—(तम् उ) उस ही (पुरुहुतम्) बहुत पुकारे हुए (पुरुष्टुतम्) बहुत बड़ाई किये हुए (तविशम्) महान (इन्द्रम्) परमात्मा को (अभि) सब ओर से (प्रगायत) भली प्रकार गाओ और (गीर्भिः) वाणियों से (आ) सब प्रकार (विवासत) सत्कार करो।

भावार्थ—हे मनुष्यो ! वह परमात्मा सब से बड़ा है उसको जानकर उसी की प्रार्थना, उपासना करो, और अपनी वाणियों से भी ईश्वर की महिमा को निरूपण करने वाले वेद मन्त्रों से प्रभु का सत्कार करो ॥ ८१ ॥

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥८२॥ २०।६८।९॥

शब्दार्थ—हे (शतक्रतो) असंख्य पदार्थों में बुद्धि वाले और जगत् निर्माणादि अनन्त कर्मों के करने वाले (इन्द्र) बड़े ऐश्वर्य के स्वामी (वाजेषु) संग्रामों के बीच (वाजिनम्) महाबलवान् (तम् त्वा) उस आपको (धनानाम्) धनों के (सातये) लाभ के लिये (वाजयामः) हम प्राप्त करते हैं।

भावार्थ—परमात्मा महाज्ञानी और महा-उद्योगी हैं, अनेक प्रकार के संग्रामों में विजयशाली हैं। ऐसे परमात्मा की भक्ति करने वाले पुरुष को चाहिए कि वाह्याभ्यन्तर संग्राम को जीतकर अनेक प्रकार के धन को प्राप्त होकर सुखी हो। स्मरण रहे कि प्रभु की भक्ति के बिना कोई ज्ञान व कर्म हमारा सफल नहीं हो सकता। इस लिये उस प्रभु की शरण में आकर उद्योगी बनते हुए धन प्राप्त करें॥८२

यो रा॒यो॒३॑ऽवनि॑र्म॒हान्त्सु॑पा॒रः सु॑न्व॒तः सखा॑।
तस्मा॒ इन्द्रा॑य गायत ॥८३॥२०।६८।१०॥

शब्दार्थ—(यः) जो परमेश्वर (रायः) धन का (अवनिः) रक्षक व स्वामी (महान्) अपने गुणों व बलों से बड़ा है। (सुपारः)

भले प्रकार पार लगाने वाला (सुन्वतः) तत्व रस को निकालने वाले पुरुष का (सखा) प्यारा मित्र है (तस्मै) ऐसे (इन्द्राय) बड़े ऐश्वर्य वाले प्रभु के लिये आप लोग (गायत) गान किया करो।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि उस धन और सुख के रक्षक महाबली, संसार समुद्र से पार लगाने वाले ज्ञानी पुरुष के परम सहायक, परमेश्वर की ही सदा प्रार्थना उपासना से तत्व का ग्रहण करके पुरुषार्थ से धर्म का सेवन किया करें ॥ ८३ ॥

इयं कल्याण्य१जरा मर्त्यस्यामृता गृहे ।
यस्मै कृता शये स यश्चकार जजार सः॥८४॥
१०।८।२६॥

शब्दार्थ—(इयं कल्याणि) यह कल्याण करने वाली देवता परमात्मा (अजरा) जरा रहित (अमृता) अमर है । (मर्त्यस्य गृहे) मर्त्य के हृदय रूपी घर में निवास करता है । (यस्मै) जिसके लिये (कृता) कार्य करती है (सः चकार) वह कार्य करने में समर्थ होता है और (यः शये) जो सोता है (सः जजार) वह जीर्ण हो जाता है ।

भावार्थ—परमात्मदेव सदा अजर अमर हैं सब का कल्याण करने वाले हैं । मरण-धर्मा मनुष्य के हृदय रूपी घर में निवास करते हैं जिसके ऊपर इस प्रभु की कृपा होती है वह कृत कार्य और यशस्वी होता है परन्तु जो सोता है अर्थात् परमात्मा के ध्यान और भक्ति आदि साधनों से विमुख

होता है वह शीघ्र जीर्ण होकर नष्ट हो जाता है ॥ ८४ ॥

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः । प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रो भवद् वशी ॥८५॥ ११।५।१६॥*

शब्दार्थ—(आचार्य्यः) वेदशास्त्रज्ञाता आचार्य्य (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी होवे (प्रजापतिः) प्रजापालक मनुष्य राजा आदि (ब्रह्मचारी) ब्रह्मचारी होवें । (प्रजापतिः) प्रजापालक होकर (विराजति) विविध प्रकार राज्य करता है । (विराट्) बड़ा राजा

* इस मन्त्र से पुस्तक के अन्त तक जितने मन्त्र हैं वे प्रायः ईश्वर विषयक नहीं हैं । किन्हीं कारणों से दूसरे विषय इस संग्रह में आगए हैं । (सम्पादक)

(वशी) वश में करनेवाला (इन्द्रः) बड़े ऐश्वर्यवाला (अभवत्) होजाता है।

भावार्थ—परम दयालु परमेश्वर हम को उपदेश करते हैं कि पाठशालाओं के अध्यापक ब्रह्मचारी होने चाहिये और प्रजा शासक राजा और राजपुरुष भी ब्रह्मचारी होने चाहियें। यदि यह दोनों व्यभिचारी होवें तो न ही चारुतया विद्या का अध्ययन करा सकते हैं और न ही राज्य व्यवस्था ठीक ठीक चला सकते हैं। प्रजापालक राजा अपनी प्रजा-पर शासन करता हुआ बड़ा राजा और इन्द्र होजाता है ॥८५॥

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ॥
॥८६॥ ११।५।१७॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेद विचार और जितेन्द्रियता रूपी (तपसा) तप से (राजा राष्ट्रं विरक्षति) राजा अपने राज्य की रक्षा करता है। (आचार्यो) वेद और उपनिषत् के रहस्य के जानने वाला अध्यापक (ब्रह्मचर्येण) वेदविद्या और इन्द्रिय दमन से(ब्रह्मचारिणम्)वेद विचारने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को(इच्छते)चाहता है।

भावार्थ—जो राजा इन्द्रियदमन और वेद-विचार रूपी ब्रह्मचर्य वाला है वह प्रजापालन में बड़ा निपुण होता है और ब्रह्मचर्य के कारण आचार्य विद्या वृद्धि के लिये ब्रह्मचारी से प्रेम करता है ॥ ८६ ॥

ब्रह्मचर्येण कन्या३युवानं विन्दते पतिम् ।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वो घासं जिगीषति॥८७
११।५।१८॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेदाध्ययन और इन्द्रियदमन से (कन्या) योग्य पुत्री (युवानम् पतिम्) ब्रह्मचर्य से बलवान्, पालन पोषण करने वाले, ऐश्वर्यवान् भर्ता को (विन्दते) प्राप्त होती है। (अनड्वान्) रथ में चलने वाला बैल और (अश्वः) घोड़ा (ब्रह्मचर्येण) नियम से ऊर्ध्व रेता होकर (घासम्) तृणादिक को (जिगीषति) जीतना चाहता है।

भावार्थ—कन्या ब्रह्मचर्य से पूर्ण विदुषी और युवती होकर पूर्ण विद्वान् युवा पुरुष से विवाह करे और जैसे बैल, घोड़े आदि बलवान् और शीघ्रगामी पशु घास, तृण खाकर ब्रह्मचर्य नियम से बलवान् सन्तान उत्पन्न करते हैं। वैसे ही मनुष्य पूर्ण विद्वान्

युवा होकर अपने सदृश कन्या से विवाह करके नियम पूर्वक बलवान् सुशील संतान उत्पन्न करें ॥ ८७ ॥

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत । इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत् ॥८८॥

११।५।१९॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मचर्येण) वेदाध्ययन और इन्द्रिय दमन रूपी (तपसा) तप से (देवाः) विद्वान् पुरुष (मृत्युम्) मृत्यु को अर्थात् मृत्यु के कारण निरुत्साह दरिद्रता आदि मृत्यु को (अप) हटाकर, दूर कर (अघ्नत) नष्ट करते हैं। (इन्द्रः) मनुष्य जो इन्द्रियाधीन है (ब्रह्मचर्येण) ब्रह्मचर्य के नियम पालने से (ह) ही (देवेभ्यः) दिव्य

शक्ति वाली इन्द्रियों के लिये (स्वः आभरत) तेज़ व सुख धारण करता है ।

भावार्थ—ब्रह्मचर्यरूपी तप से विद्वान् पुरुष मृत्यु को दूर भगा देते हैं और इस ब्रह्मचर्य रूपी तप से ही अपने नेत्र श्रोत्रादि इन्द्रियों में तेज और बल भर देते हैं ॥८८॥

पार्थिवा दिव्याः पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये । अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः ॥८९॥ ११।५।२१॥

शब्दार्थ—(पार्थिवः) पृथिवी में होने वाले (दिव्याः) आकाश में विचरने वाले पक्षी (पशव आरण्या) वन में रहने वाले पशु (च) और (ग्रम्याश्च) ग्राम में रहने वाले पशु (अपक्षाः) विना पक्ष के (पक्षिणः)

पक्ष वाले (च) पंखों वाले (ये ते) जो ये सब (जाताः) उत्पन्न हुए (ब्रह्मचारिणः) ब्रह्मचारी ही हैं।

भावार्थ—प्रभु के सृष्टि क्रम में देख रहे हैं कि ईश्वर रचित पशु, पक्षी ईश्वर के नियम के अनुसार चलते हुए ब्रह्मचारी ही हैं। ब्रह्मचारी होने के कारण मनुष्य की अपेक्षा अधिक उद्यमी और रोग रहित हैं। इसलिए सब मनुष्यों को चाहिये कि इस वेदवाणी को पढ़कर बाल विवाहादि दोषों से बचकर गृहस्थी होते हुए भी अधिक विषयासक्त न होवें जिससे आयु, ज्ञान, तेज, उद्यम, धर्म और आरोग्यता आदि बढ़ जायें ॥८९॥

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे

तायमाने । सरस्वतीं सुकृतो हवन्ते सर-
स्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥९०॥ १८।४।४५॥

शब्दार्थ—(सरस्वतीम्) वेद विद्या को (देवयन्तः) दिव्य गुणों को चाहने वाले विद्वान् पुरुष (तायमाने) विस्तृत होते हुए (अध्वरे) हिंसा रहित यज्ञादि कर्मों में (हवन्ते) बुलाते हैं । (सरस्वतीम्) सरस्वती को (सुकृतः) सुकृती अर्थात् पुण्यात्मा धार्मिक लोग (हवन्ते) बुलाते हैं। (सरस्वती) विद्या (दाशुषे) विद्यादान करने वाले को (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थों को (दात्) देती है ।

भावार्थ—विद्या महारानी उसमें भी विशेष करके ब्रह्मविद्या को बड़े २ विद्वान् पुरुष चाहते हैं और यज्ञादिक उत्तम व्यव-

द्वारों में भी उसी वेद विद्या महारानी की आवश्यकता है। संसार के सब धर्मात्मा पुरुष इस वेदविद्या रूपी सरस्वती की इच्छा करते हैं। और सरस्वती महारानी भी मोक्ष पर्यन्त सब सुखों को देती है ॥९०॥

उत् तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवान् यज्ञेन बोधय।
आयुः प्राणं प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं च वर्धय ॥९१॥ १९।६३।१॥

शब्दार्थ—(ब्रह्मणस्पते) हे वेद रक्षक विद्वान् (उत्तिष्ठ) उठो। और (देवान्) विद्वानों को (यज्ञेन) श्रेष्ठ कर्म से (बोधय) जगा। (यजमानम्) श्रेष्ठ कर्म करने वाले को (आयुः) जीवन (प्राणम्) आत्मबल

(प्रजाम्) सन्तान (पशून्) गौ, घोड़े आदि पशु (कीर्तिम्) यश को (वर्धय) बढ़ा।

भावार्थ—विद्वान् पुरुषों का कर्तव्य है कि दूसरे विद्वानों से मिलकर वेदों का और यज्ञादिक उत्तम कर्मों का प्रचार करें जिससे यज्ञादिक कर्म करने वाले यजमान चिरंजीवी बनकर आत्मिक बल, पुत्रादि संतान और गौ घोड़े आदि सुख-दायक पशु और यश को प्राप्त होकर अपनी और अपने देश की उन्नति करें ॥९१॥

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम् ॥
॥९२॥ ३।३०।२॥

शब्दार्थ—(पुत्रः) पुत्र (पितुः) पिता का

(अनुव्रतः) अनुकूलव्रती होकर (मात्रा) माता के साथ (संमनाः) एक मन वाला (भवतु) होवे । (जाया) स्त्री (पत्ये) पति से (मधुमतीम्) मीठी (शन्तिवान्) शान्ति देनेवाली (वाचम्) वाणी (वदतु) बोले।

भावार्थ—परमात्मा का जीवों को उपदेश है कि पुत्र माता पिता के अनुकूल हो। स्त्री अपने पति को मधु जैसे मीठे और शान्ति-दायक वचन बोला करे। घर में पिता पुत्र का और पुत्र माता का आपस में झगड़ा न हो और भार्या पति के लिये मीठे और शान्ति दायक वचन बोले, कभी कठोर शब्द का प्रयोग न करे। ऐसे वर्ताव करने से गृहस्था-श्रम स्वर्गाश्रम बन जाता है। इस गृहस्था-श्रम को स्वर्गाश्रम बनाना चाहिये ॥९२॥

मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥९३

शब्दार्थ—(मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्) भाई भाई के साथ द्वेष न करे (मा स्वसारमुत स्वसा) और बहिन बहिन के साथ द्वेष न करे। (सम्यञ्चः) एक मतवाले और (सव्रतः) एक व्रती (भूत्वा) होकर (भद्रया) कल्याणी रीति से (वाचं) वाणी को (वदत) बोलो।

भावार्थ—भाई भाई और बहिन बहिन आपस में कभी द्वेष न करें। यह आपस में मिलकर एक मत वाले, एक व्रतवाले होकर एक दूसरे को शुभवाणी से बोलते हुए सुख के भागी बनें॥९३॥

येने देवा न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः।
तत्कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः ॥
॥९४॥ ३।३०।४॥

शब्दार्थ—(येन) जिस वैदिक मार्ग से (देवाः) विद्वान् पुरुष (न वियन्ति) विरुद्ध नहीं चलते (च) और (नो) न कभी (मिथः) आपस में (विद्विषते) द्वेष करते हैं। (तत्) उस (ब्रह्म) वेदमार्ग को (वः) तुम्हारे घर में (पुरुषेभ्यः) सब पुरुषों के लिये (संज्ञानम्) ठीक ठीक ज्ञान का कारण (कृण्मः) हम करते हैं।

भावार्थ—परमदयालु परमात्मा हमें सुखी बनाने के लिये वेदमन्त्रों द्वारा अति उत्तम उपदेश कर रहे हैं। सब विद्वानों को चाहिये

कि वैदिक धर्म से विरुद्ध कभी न चलें, न आपस में कभी विद्वेष करें। इस वेद पथ का ही हमारे कल्याण के लिये यथार्थ रूप से उपदेश किया है ॥९४॥

समानी प्रपा सह वोन्नभागः समाने योक्त्रे सह वो युनज्मि ।। सम्यञ्चोऽग्निं सपर्यतारा नाभिमिवाभितः ॥९५॥ ३।३०।६॥

शब्दार्थ—(वः) तुम्हारी (प्रपा) जलशाला (समानी) एक हो। और (अन्नभागः) अन्न का भाग (सह) साथ २ हो। (समाने) एक ही (योक्त्रे) जोते में (वः) तुमको (सह) साथ २ (युनज्मि) मैं जोड़ता हूँ। (सम्यञ्चः) मिलकर गतिवाले तुम (अग्निम्) ज्ञानस्वरूप परमात्मा को (सपर्यत) पूजो

(इव) जैसे (आराः) पहिये के दण्ड (नाभिम्) नाभि में (अभितः) चारों ओर से सटे होते हैं।

भावार्थ—आपकी पानी पीने की और भोजन करने की जगह एक हो। जब हमारा सब का पवित्र भोजन होगा तब आपस में झगड़ा नहीं होगा। जैसे जोते में अर्थात् एक उद्देश्य के लिए परमात्मा ने हमें मनुष्य देह दिया है तो हम रल मिल के व्यवहार, परमार्थ को सिद्ध करें। जैसे आरा रूप काष्टों का नाभि आधार है, ऐसे ही सब जगत् का आधार परमात्मा है उसकी पूजा करें और भौतिक अग्नि में हवन करें और शिल्प विद्या से काम लें ॥९५॥

जीवलास्थं जीव्यासं सर्वमायुर्जीव्यासम्।

इन्द्र जीव सूर्य देवा जीवा जीव्यासमहम्
सर्वमायुर्जीव्यासम् ॥९६॥ १९।६९।४॥
१९।७०।१॥

शब्दार्थ—हे विद्वानो ! तुम (जीवला:स्थ) जीवनदाता हो। (जीव्यासम्) मैं जीता रहूँ (सर्वमायुर्जीव्यासम्) मैं सम्पूर्ण आयु जीता रहूँ।

(इन्द्र जीवम्) हे परमैश्वर्यवाले मनुष्यो तुम जीते रहो। (सूर्य जीव) हे सूर्य समान तेजस्वी तू जीता रह।

(देवा: जीवा:) हे विद्वान् लोगो आप जीते रहो (जीव्यासमहम्) मैं जीता रहूँ। (सर्वम् आयुः जीव्यासम्) सम्पूर्ण आयु जीता रहूँ।

भावार्थ—सब मनुष्यों को चाहिये कि जीवन विद्या का उपदेश देने वाले विद्वानों के सत्संग से और परस्पर उपकार करते हुए अपना जीवन बढ़ावें और परमैश्वर्यवान् तेजस्वी होकर विद्वानों के साथ पूर्णायु को प्राप्त करें ॥ ९६ ॥

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् । आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् । मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥९७॥ १९।७१।१॥

शब्दार्थ—(वरदा) इष्ट फल देने वाली (वेद माता) ज्ञान की माता वेदवाणी (मया) मेरे द्वारा (स्तुता) स्तुति की गई है । आप विद्वान् लोग (पावमानी) पवित्र करने वाले

परमात्मा के बताने वाली वाणी वेद वाणी को (द्विजानाम्) ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों में (प्रचोदयन्ताम्) आगे बढ़ावें। (आयुः) जीवन (प्राणम्) आत्मिक बल (प्रजाम्) सन्तानादि, (पशुम्) गौ, घोड़ा आदि पशु (कीर्त्तिम्) यश (द्रविणम्) धन (ब्रह्मवर्चसम्) वेदाभ्यास का तेज (मह्यं दत्वा) मुझे देकर हे विद्वान् लोगो ! (ब्रह्मलोकम्) वेदज्ञानियों के समाज में (व्रजत) प्राप्त कराओ ॥ ९७ ॥

भावार्थ—इस मन्त्र में सारे सुखों की प्राप्ति का उपदेश है। वेदमाता जो ज्ञान के देने वाली परमात्मा की पवित्रवाणी वेदवाणी सारे इष्ट फलों के देने वाली है— इसकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है।

सब विद्वानों को योग्य है कि इस ईश्वरीय पवित्र वेदवाणी को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि मनुष्य मात्र में प्रचार करते हुए सारे संसार में फैला देवें। उस वाणी की कृपा से पुरुष को दीर्घ जीवन, आत्मबल, पुत्रादि सन्तान, गौ घोड़े आदि पशु, यश और धन प्राप्त होते हैं। यही वेदवाणी पुरुष को ब्रह्मवर्चस देकर वेदज्ञानियों के मध्य में सत्कार और प्रतिष्ठा प्राप्ति कराती हुई ब्रह्मलोक को अर्थात् 'ब्रह्मैव लोकः ब्रह्मलोकः', सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् जो परमात्मा उसको जानकर मोक्षधाम को प्राप्त कराती है ॥ ९७ ॥

अपक्रामन् पौरुषेयाद् वृणानो दैव्यं वर्चः ।
प्रणीतीरभ्यावर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह ॥
॥९८॥७।१०५।१॥

शब्दार्थ—हे विद्वान् पुरुष ! (पौरुषेयात्) पुरुष वध से (अपक्रामन्) हटता हुआ (दैव्यम् वचः) परमेश्वर के वचन को (वृणानः) मानता हुआ तू (विश्वेभिः सखिभिः सह) सब साथी मित्रों के सहित (प्रणीतीः) उत्तम नीतियों का (अभ्यावर्तस्व) सब ओर से वर्ताव कर।

भावार्थ—मोक्षार्थी पुरुष को चाहिये कि ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, सत्सङ्ग, ईश्वरभक्ति पूर्वक प्रणवादिकों का जप करता हुआ और अपने सब इष्ट मित्रों को इस मार्ग में चल कर और उनको चलाता हुआ आनन्द का भागी बने। कभी किसी पुरुष के मारने का संकल्प ही न करे प्रत्युत उनको प्रभु का भक्त और वेदानुयायी बनाकर उनसे प्यार करने वाला हो॥ ९८॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् । भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वोवयं उच्यते सभासु ॥९९॥

४।२१।६॥

शब्दार्थ—(गावः) हे गौओ या विद्याओ (यूयम्) तुम (कृशम्) दुर्बल से (चित्) भी (अश्रीरम् चित्) धन रहित से (मेदयथा) स्नेह करती और पुष्ट करती हो। (सुप्रतीकम् कृणुथ) बड़ी प्रतीति वाला वा बड़े रूप वाला बना देती है। (भद्रं वाचः) शुभ बोलने वाली गौओ और कल्याण करने वाली विद्याओ (गृहम्) घर को और हृदय को (भद्रम् कृणुथ) सुखी और मङ्गलमय कर देती हो (सभासु)

सभाओं में (वः) तुम्हारा ही (वयः) बल (बृहद्) बड़ा (उच्यते) बखाना जाता है।

भावार्थ—गौ का दूध घृतादि सेवन करके पुरुष सबल और विद्या से भी दुर्बल पुरुष सबल हो जाता है और निर्धन पुरुष भी गौ विद्या की कृपा से धनवान् और रूपवान् हो जाता है। विद्वानों के घर में सदा आनन्द रहता है और गौ वालों के घर में सदा आनन्द रहता है। विद्वानों की और गौ वालों की सभा समाजों में बड़ाई होती है ॥९९॥

दश साकमजायन्त देवा देवेभ्यः पुरा।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स वा अद्य महद् वदेत् ॥१००॥ ११।८।३॥

शब्दार्थ—(दश देवा) पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां यह दस दिव्य पदार्थ (पुरा) पूर्वकाल में (देवेभ्यः) कर्म फलों से (साकम्) परस्पर मिले हुए (अजायन्त) पैदा हुए (यो वै) जो पुरुष निश्चय करके (तान् प्रत्यक्षम् विद्यात्) उनको निस्सन्देह जान लेवे (स वै) वही (अद्य) आज (महद्) बड़े परमात्मा को (वदेत्) उपदेश करे।

भावार्थ—प्राणिओं के पूर्व सञ्चित कर्मों से परमेश्वर उनको पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांचकर्मेन्द्रिय प्रदान करता है। इनमें श्रोत्र और नेत्र जिह्वा नासिका, त्वचा ये ज्ञान के साधन होने से ज्ञानेन्द्रिय कहाते हैं। और वाक्, हाथ, पाओं, पायु, उपस्थ, ये पांच कर्मों के

साधन होने से कर्मेन्द्रिय कहलाते हैं। ये दस इन्द्रिय और इसके कर्मों से परे परमात्मा देव हैं। उनको जानकर विद्वान् पुरुष ही उस परमात्मा का उपदेश कर सकता है ॥१००॥

* ओ३म् शान्तिश्शान्तिश्शान्तिः *